श्रमण प्रतिक्रमण

वाचना-प्रमुख :
गणाधिपति तुलसी

सम्पादक-विवेचक :
आचार्य महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती प्रकाशन
लाडनूं—३४१३०६
(राजस्थान)

श्रमण प्रतिक्रमण

वाचना-प्रमुख :
गणाधिपति तुलसी

सम्पादक-विवेचक :
आचार्य महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती प्रकाशन
लाडनूं—३४१३०६
(राजस्थान)

प्रकाशक : जैन विश्व भारती, लाडनूं—३४१३०६

ISB No. 81-7195-028-0

तृतीय संस्करण : १९९७

मूल्य : १०/- रुपये

मुद्रक : मित्र परिषद् कलकत्ता के आर्थिक सौजन्य से स्थापित
जैन विश्व भारती प्रेस, लाडनूं ।

दो शब्द

श्रमण प्रतिक्रमण को व्यवस्थित रूप देने की कल्पना बहुत दिनों से हो रही थी। बालोतरा चतुर्मास (सन् १९८३) में वह कल्पना आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य में साकार हुई। अब वह संशोधित मूलपाठ, संस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद और भावार्थ सहित प्रस्तुत है।

अनुक्रम

१. सामाइयं	१—३
१. आवस्सई-सुत्तं	१
२. नमुक्कार-सुत्तं	१
३. सामाइय-सुत्तं	२
२. चउवीसत्थओ	४—७
चउवीसत्थव-सुत्तं	४
३. वंदणयं	८—१०
वंदणय-सुत्तं	८
४. पडिक्कमणं	११—५१
१. णाणाइयार-सुत्तं	११
२. दंसणाइयार-सुत्तं	१२
३. तस्स सव्वस्स सुत्तं	१४
४. नमुक्कार-सुत्तं	१५
५. सामाइय-सुत्तं	१५
६. मंगल-सुत्तं	१५
७. पडिक्कमण-सुत्तं	१६
८. इरियावहिय-सुत्तं	१८
९. सेज्जा-अइयार-पडिक्कमण-सुत्तं	२०
१०. गोयर-अइयार-पडिक्कमण-सुत्तं	२१
११. सज्झायादि-अइयार-पडिक्कमण-सुत्तं	२३
१२. एगविधादि-अइयार-पडिक्कमण-सुत्तं	२५
१३. निग्गंथपावयणे थिरीकरण-सुत्तं	३२
१४. खामेमि	३६
१५. इच्छामि खमासमणो	३७
१६. पंचपद वन्दना	३७
१७. खामणा-सुत्तं	३७
१८. ८४ लाख जीव-योनि	३९

संदर्भ स्थल

१. भय के सात स्थान ३९
२. मद के आठ स्थान ३९
३. ब्रह्मचर्य की नव गुप्तियां ३९
४. दस प्रकार का श्रमण-धर्म ४०
५. उपासक की ग्यारह प्रतिमाएं ४०
६. भिक्षु की बारह प्रतिमाएं ४१
७. तेरह क्रिया-स्थान ४१
८. चौदह भूतग्राम—जीव-समूह ४२
९. परमाधार्मिक देवों के पन्द्रह प्रकार ४२
१०. गाथा-षोडषक ४२
११. सतरह प्रकार का असंयम ४२
१२. अठारह प्रकार का ब्रह्मचर्य ४३
१३. ज्ञाता के उन्नीस अध्ययन ४३
१४. असमाधि के बीस स्थान ४३
१५. शबल के इक्कीस प्रकार ४४
१६. बावीस परीषह ४५
१७. सूत्रकृतांग के तेईस अध्ययन ४६
१८. देव के चौबीस प्रकार ४६
१९. पचीस भावनाएं ४६
२०. तीन आगम के छबीस उद्देशन-काल ४७
२१. अनगार के सताबीस गुण ४७
२२. आचार-प्रकल्प (अट्ठाइस) ४८
२३. पाप श्रुत प्रसंग (उनतीस) ४८
२४. मोहनीय के स्थान (तीस) ४८
२५. सिद्धों के आदि-गुण (इकतीस) ४९
२६. योग संग्रह (बत्तीस) ५०
२७. आशातना (तेतीस) ५१

५. काउस्सग्गो ५२—५४

१. अइयार-विसोहण-सुत्तं ५२
२. नमुक्कार-सुत्तं ५२
३. सामाइय-सुत्तं ५२
४. अइयार-चिंतण-सुत्तं ५२
५. काउस्सग्गपइण्णा-सुत्तं ५२

६. चउवीसत्थव-सुत्तं ५४

६. पच्चक्खाणं ५५—५९

१. अईअं.... ५५

२. पच्चक्खाण-सुत्तं ५५

(क) नमुक्कारसहियं ५५

(ख) पोरिसी ५६

(ग) अभत्तट्ठं ५६

३. सक्कत्थुई ५७

परिशिष्ट १

१. ज्ञान के अतिचार ५९

२. दर्शन के अतिचार ५९

३. चारित्रातिचार ६०

४. तप अतिचार ६३

५. वीर्यातिचार ६३

परिशिष्ट २

पंचपद-वंदना ६४

परिशिष्ट ३

८४ लाख जीवयोनि ६६

परिशिष्ट ४

प्रतिक्रमण-विधि ६७

१ सामाइयं

१. आवस्सई-सुत्तं

आवस्सई इच्छाकारेण संदिसह भयवं ! देवसियं पडिक्कमणं ठाएमि देवसिय-नाण-दंसण-चरित-तव-अइयार-चिंतवणट्ठं करेमि काउस्सग्गं ।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
आवश्यिकी	अवश्यकरणीय (में प्रवृत्त होता हूं)
इच्छाकारेण	आप इच्छापूर्वक
संदिशत	अनुमति दें,
भगवन् !	भगवन् !
दैवसिकं	दैवसिक
प्रतिक्रमणं	प्रतिक्रमण में
तिष्ठामि	स्थित होता हूं,
दैवसिक-	दैवसिक
ज्ञान-दर्शन-चारित्र-	ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के
तपोऽतिचारचिन्तनार्थं	अतिचार का चिन्तन करने के लिए
करोमि	करता हूं
कायोत्सर्गम्	कायोत्सर्ग ।

भावार्थ

भगवन् ! मैं अवश्य करणीय कार्य में प्रवृत्त होता हूं । आप मुझे इच्छापूर्वक अनुमति दें । मैं दैवसिक प्रतिक्रमण में स्थित होता हूं, दैवसिक ज्ञान, दर्शन चारित्र और तप के अतिचार का चिन्तन करने के लिए कायोत्सर्ग करता हूं।

२. नमुक्कार-सुत्तं

नमो अरहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं, नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्वसाहूण ।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
नमः अर्हद्भ्यः	नमस्कार हो अर्हतों को
नमः सिद्धेभ्यः	नमस्कार हो सिद्धों को
नमः आचार्येभ्यः	नमस्कार हो आचार्यों को
नमः उपाध्यायेभ्यः	नमस्कार हो उपाध्यायों को
नमः लोके सर्वसाधुभ्यः	नमस्कार हो लोक में सर्व साधुओं को।[1]

भावार्थ

अर्हतों, सिद्धों, आचार्यों, उपाध्यायों तथा लोक में समस्त साधुओं को मेरा नमस्कार हो।

३. सामाइय-सुत्तं

करेमि भंते ! सामाइयं सव्वं सावज्जं जोगं पच्चक्खामि, जावज्जीवाए तिविहं[2] तिविहेणं—मणेणं वायाए काएणं, न करेमि न कारवेमि करतंपि अन्नं न समणुजाणामि, तस्य भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
करोमि	करता हूं
भवन्त !	भगवन्
सामायिकं	सामायिक
सर्वं	सर्व
सावद्यं	सपाप
योगं	प्रवृत्ति का
प्रत्याख्यामि	प्रत्याख्यान करता हूं।
यावज्जीवं	जीवन पर्यन्त
त्रिविधत्रिविधेन[3]	तीन-तीन प्रकार से
मनसा	मन से
वाचा	वचन से

---

१. यहां अनुशासनहीन साधु विवक्षित नहीं हैं। जो ज्ञान, दर्शन तथा चारित्र की आराधना और अनुशासन से सम्पन्न हैं, वे ही साधुरूप में विवक्षित हैं।

२. मकरः अलाक्षणिकः।

३. योगत्रिक-करणत्रिकेण।

कायेन	काया से
न करोमि	नहीं करूंगा
न कारयामि	नहीं कराऊंगा
कुर्वन्तमपि अन्यं	करते हुए दूसरे का भी
न समनुजानामि	अनुमोदन नहीं करूंगा
तस्य	उसका (अतीत में किए हुए पाप का)
भदन्त !	भगवन्
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं।
निंदामि	आत्मसाक्षी से निंदा करता हूं।
गर्हे	आपकी साक्षी से गर्हा करता हूं।
आत्मानं	अपनी आत्मा (शरीर) का
व्युत्सृजामि।	त्याग करता हूं।

भावार्थ

भगवन् ! मैं सामायिक[1] करता हूं। मैं जीवन-पर्यन्त समस्त पापकारी प्रवृत्ति का, तीन कारण—मन, वचन और काया से तथा तीन योग— करने, कराने और अनुमोदन करने का प्रत्याख्यान करता हूं।

भगवन् ! अतीत में किए हुए पाप का मैं प्रतिक्रमण करता हूं, आत्मसाक्षी से उसकी निंदा करता हूं, आपकी साक्षी से उसकी गर्हा करता हूं और अपने आपको सपाप प्रवृत्तियों से पृथक् करता हूं।

४. आलोयण-सुत्तं[2]

५. काउस्सग-पइण्णा सुत्तं[3]

---

१. समय का अर्थ है—आत्मा। आत्मा में अवस्थित रहने का अनुष्ठान सामायिक है।

२. देखें—चतुर्थ प्रकरण का पडिक्कमण-सुत्तं। इस पाठ में 'पडिक्कमिउं' के स्थान में 'आलोइउं' पाट होगा।
आलोइउं=आलोचना करने की

३. देखें—पंचम प्रकरण का काउस्सग्गपइण्णा सुत्तं।

२ चउवीसत्थओ

चउवीसत्थव-सुत्तं

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे ।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसंपि केवली ।।१।।
उसभमजियं च वंदे, संभवमभिनंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ।।२।।
सुविहिं च पुप्फदंतं, सीअल सिज्जंस वासुपुज्जं च ।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ।।३।।
कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च ।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ।।४।।
एवं मए अभिथुआ, विहुय-रयमला पहीण-जरमरणा ।
चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ।।५।।
कित्तिय वंदिय मए, जेए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
आरोग्ग-बोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दिंतु ।।६।।
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ।।७।।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
लोके	लोक में
उद्योतकरान्	उद्योत करने वाले
धर्मतीर्थकरान्	धर्मतीर्थ के कर्ता
जिनानं	जिन (जिनेश्वर)
अर्हतः	अर्हतों का
कीर्तयिष्यामि	कीर्तन करूंगा
चतुर्विंशतिमपि	चौबीस
केवलिनः	केवलज्ञानियों का ।
ऋषभं	ऋषभ
अतिंज	और अजित को

वन्दे	वंदन करता हूं
सम्भवं	संभव
अभिनंदनं च	अभिनन्दन
सुमतिं च	सुमति
पद्मप्रभं	पद्मप्रभ
सुपार्श्वं	सुपार्श्व
जिनं च	जिन और
चंद्रप्रभं	चंद्रप्रभ को
वन्दे	वन्दन करता हूं।
सुविधिं च	सुविधि[1]
पुष्पदन्तं	पुष्पदन्त[2]
शीतलं	शीतल
श्रेयांसं	श्रेयांस
वासुपूज्यं च	वासुपूज्य
विमलं	विमल
अनन्तं च	अनन्त तथा
जिनं	जिनेश्वर
धर्मं	धर्म और
शान्तिं च	शान्ति को
वन्दे	वंदन करता हूं।
कुन्थुं	कुन्थु
अरं च	अर और
मल्लिं	मल्लि को
वन्दे	वन्दन करता हूं
मुनिसुव्रतं	मुनिसुव्रत और
नमिजिनं च	नमिजिन को
वन्दे	वन्दन करता हूं
अरिष्टनेमिं	अरिष्टनेमि
पार्श्वं	पार्श्व
तथा वर्द्धमानं	तथा वर्द्धमान को।
एवं	इस प्रकार
मया	मेरे द्वारा
अभिष्टुताः	स्तुति किए हुए

१. २. नौवें तीर्थंकर के दो नाम हैं—सुविधि और पुष्पदन्त।

विधुतरजोमलाः	रज और मल से रहित
प्रहीणजरामरणाः	जरा और मरण से मुक्त
चतुर्विंशतिः	चौबीस ही
जिनवराः	जिनवर
तीर्थकराः	तीर्थंकर
मम	मुझ पर
प्रसीदन्तु	प्रसन्न हों।
कीर्तिताः	कीर्तित
वन्दिताः	वन्दित
मया	मेरे द्वारा
ये	जो
एते	ये
लोके	लोक में
उत्तमाः	उत्तम
सिद्धाः	सिद्ध हैं (वे)
आरोग्यं	आरोग्य
बोधिलाभं	बोधिलाभ
समाधिवरमुत्तमं	श्रेष्ठ उत्तम समाधि
ददतु	दें।
चंद्रेभ्यः	चंद्रमाओं से
निर्मलतराः	निर्मलतर
आदित्येभ्यः	सूर्यों से
अधिकं	अधिक
प्रकाशकराः	प्रकाश करने वाले
सागरवरगंभीराः	समुद्र से गंभीर
सिद्धाः	सिद्ध भगवान
सिद्धिं	सिद्धि—मुक्ति
मम	मुझे
दिशंतु।	दें।

भावार्थ

जो लोक में प्रकाश करने वाले, धर्मतीर्थ के प्रवर्तक जिनेश्वर और अर्हत् हैं, मैं उन चौबीस केवलियों का कीर्त्तन करूंगा।

मैं ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमित, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चंद्रप्रभ, पुष्पदंत यानी सुविधि, शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल, अनन्त,

धर्म, कुन्थु, अर, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमि, अरिष्टनेमि, पार्श्व और वर्द्धमान को वंदन करता हूं।

इस प्रकार जिनकी मैंने स्तुति की है, जो कर्म-रज-मल से मुक्त हैं, जो जरा और मरण से मुक्त हो चुके हैं, वे चौबीस जिनेश्वर तीर्थंकर मुझ पर प्रसन्न हों।

मैंने जिनका कीर्तन, वंदन किया है, वे लोक में उत्तम सिद्ध भगवान् मुझे आरोग्य, बोधि-लाभ और उत्तम समाधि दें।

जो चंद्रमाओं से भी निर्मलतर, सूर्यों से भी अधिक प्रकाश करने वाले और समुद्र के समान गंभीर हैं, वे सिद्ध भगवान् मुझे मुक्ति दें।

३ वंदणयं

वंदणय-सुत्त

इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं, जावणिज्जाए निसीहियाए। अणुजाणह मे मिउग्गहं। निसीहि अहोकायं काय-संफासं। खमणिज्जो भे किलामो।

अप्पकिलंताणं बहुसुभेण भे दिवसो वइक्कंतो ?

जत्ता भे ?

जवणिज्जं च भे ?

खामेमि खमासमणो ! देवसियं वइक्कमं।

आवस्सियाए पडिक्कमामि खमासमणाणं देवसियाए आसायणाए तित्तीसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए मणदुक्कडाए वयदुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोभाए सव्वकालियाए सव्वमिच्छोवयाराए सव्वधम्माइक्कमणाए आसायणाए जो मे अइयारो कओ तस्स खमासमणो ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
इच्छामि	इच्छा करता हूं
क्षमाश्रमण !	हे महाश्रमण !
वन्दितुं,	वन्दना करने के लिए
यमनीयया निषद्यया	संयत निषद्या से संयम पूर्वक बैठकर,
अनुजानीत	अनुज्ञा दें
मे	मुझे
मितावग्रहम्।	मितावग्रह[1] में (प्रवेश करने की)।
निषद्य	बैठकर
अधःकायं	(गुरु के) चरण को
कायसंस्पर्शम्।	अपने शरीर से (मस्तक से) स्पर्श करता हूं।

१. अवग्रह—गुरु जहां अवस्थित हों, वहां चारों दिशाओं में उनके साढ़े तीन-तीन हाथ का क्षेत्र 'अवग्रह' होता है।

क्षमणीयो	क्षमा करें
भवतां	आपको
क्लमः	खिन्नता हुई हो
अल्पकलान्तानां	आप कष्टानुभूति से रहित हैं
बहुशुभेन	बहुत शुभ प्रवृत्ति से
भवतां	आपका
दिवसो	दिन
व्यतिक्रांतः ?	बीता ?
यात्रा भवताम् ?	यात्रा आपकी ?
यमनीयं च भवताम् ?	संयम आपका ?
क्षमयामि	क्षमा चाहता हूं
क्षमाश्रमण !	हे क्षमाश्रमण !
दैवसिकं	दिवस सम्बन्धी
व्यतिक्रमम् ।	व्यतिक्रम के लिए ।
आवश्यिक्यां	अवश्य करणीय समाचारी के विषय में
प्रतिकामामि—	प्रतिक्रमण करता हूं—
क्षमाश्रमणानां	आपकी—पूज्यवर की
दैवसिक्यां	दिवस-सम्बन्धी
आशातनायां	आशातना
त्रयस्त्रिंशदन्यतरायां	तेतीस में से किसी एक
यत् किञ्चिन् मिथ्यायां	जिस किसी मिथ्या व्यवहार
मनोदुष्कृतायां	दुष्कृत मन
वाग्दुष्कृतायां	दुष्कृत वचन
कायदुष्कृतायां	दुष्कृत काया
क्रोधे	क्रोध
माने	मान
मायायां	माया
लोभे[1]	लोभ
सर्वकालिक्यां	सार्वकालिक
सर्वमिथ्योपचारायां	सर्व मिथ्या उपचार वाली
सर्वधर्मातिक्रमणायां	सभी धर्मों का अतिक्रमण करने वाली

१. आचार्य हरिभद्र सूरि ने क्रोधया, मानया, मायया, लोभया—ऐसे संस्कृत रूप दिए हैं । क्रोधया—क्रोधानुगतया आशातनया (आवश्यक-वृत्ति, भाग २, पृ० ३०)

आशातनायां	आशातना के विषय में
यो	जो
मया	मैंने
अतिचारः	अतिचार
कृतः	किया
तस्य	उसका
क्षमाश्रमण !	क्षमाश्रमण !
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
निन्दामि	उसकी निन्दा करता हूं
गर्हे	उसकी गर्हा करता हूं
आत्मानं	आत्मा का
व्युत्सृजामि	व्युत्सर्ग करता हूं ।

भावार्थ

क्षमाश्रमण । मैं संयत निषद्या से संयमपूर्वक बैठकर आपको वन्दना करना चाहता हूं ।

आप मुझे अपने परिमित अवग्रह में आने की अनुज्ञा दें । (अनुज्ञा प्राप्त करने के बाद) बैठकर मैं आपके चरण का सिर से स्पर्श करता हूं। इस स्पर्श में आपको कोई कष्ट हुआ हो तो आप मुझे क्षमा करें ।

आप कष्टानुभूति से रहित हैं । आपका यह दिन निर्विघ्नरूप में कल्याणकारी प्रवृत्ति में बीता ?

आपकी यात्रा—तप, नियम, स्वाध्याय, ध्यान की प्रवृत्ति—प्रशस्त रही ?

आपका यमनीय—इन्द्रिय और मानसिक संयम प्रशस्त रहा ?

क्षमाश्रमण ! आपके प्रति होनेवाले दिवस-सम्बन्धी व्यतिक्रम के लिए आप मुझे क्षमा करें ।

आपके प्रति अवश्य करणीय कार्य में मेरा कोई प्रमाद हुआ हो तो मैं उसका प्रतिक्रमण करता हूं ।

आपकी तेंतीस में से कोई एक भी आशातना की हो, आपके प्रति यत् किञ्चित् मिथ्याभाव आया हो या मिथ्या व्यवहार किया हो, आपके प्रति मन में कोई बुरा विचार आया हो, वचन का दुष्प्रयोग किया हो, काया की दुष्प्रवृत्ति की हो, आपके प्रति यदि क्रोध, मान, माना और लोभ के आवेश में कोई अवांछनीय व्यवहार किया हो, सर्वकाल में होनेवाली, सर्वमिथ्या उपचारों मे युक्त, सब धर्मों का अतिक्रमण करनेवाली कोई भी आशातना की हो, उसके विषय में जो मैंने अतिचार किया हो ।

हे क्षमाश्रमण ! मैं उसका प्रतिक्रमण करता हूं, निंदा करता हूं, गर्हा करता हूं, आशातना में प्रवृत्त अपने आपका व्युत्सर्ग करता हूं ।

४ पडिक्कमणं

१. णाणाइयार-सुत्तं

आगमे तिविहे पन्नत्ते, तं जहा—सुत्तागमे अत्थागमे तदुभयागमे। एयस्स सिरिनाणस्स जो मे अइआरो कओ तं आलोएमि। जं वाइद्धं वच्चामेलियं हीणक्खरं अच्चक्खरं पयहीणं विणयहीणं घोसहीणं जोगहीणं सुट्ठुदिन्नं दुट्ठुपडिच्छियं अकाले कओ सज्झाओ काले न कओ सज्झाओ असज्झाइए सज्झाइयं सज्झाइए न सज्झाइयं तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
आगमः	आगम
त्रिविधः	तीन प्रकार का
प्रज्ञप्तः	कहा गया है,
तद् यथा—	जैसे—
सूत्रागमः	सूत्रागम
अर्थागमः	अर्थागम
तदुभयागमः	और सूत्रागम-अर्थागम।
एतस्य	इस
श्रीज्ञानस्य	ज्ञान के संबंध में
यो	जो
मया	मैंने
अतिचारः	अतिचार
कृतः	किया हो
तं	उसकी
आलोचयामि।	आलोचना करता हूं।
यत्	जैसे—
व्याविद्धं	विपर्यस्त किया हो—सूत्रपाठ को आगे-पीछे किया हो
व्यत्यामेलितं	मूल पाठ में अन्य पाठ का मिश्रण किया हो।

हीनाक्षरं	अक्षरों की न्यूनता की हो।
अत्यक्षरं	अक्षरों की अधिकता की हो
पदहीनं	पदों की न्यूनता की हो
विनयहीनं	विराम-रहित पढा हो
घोषहीनं	घोष-रहित पढा हो
योगहीनं	सम्बन्ध-रहित पढा हो
सुष्ठु-अदत्तं	ज्ञान अच्छी तरह से न दिया हो
दृष्टुप्रतीच्छितं	ज्ञान अच्छी तरह ग्रहण न किया हो
अकाले कृतः स्वाध्यायः	अकाल में स्वाध्याय किया हो
काले न कृतः स्वाध्यायः	काल में स्वाध्याय न किया हो
अस्वाध्यायिके स्वधीतं	अस्वाध्यायी में स्वाध्याय किया हो
स्वाध्यायिके न स्वाधीतं	अस्वाध्यायी में स्वाध्याय न किया हो
तस्य	उससे सम्बन्धित
मिथ्या	निष्फल हो
मे	मेरा
दुष्कृतम्।	दुष्कृत।

भावार्थ

आगम तीन प्रकार का है—सूत्रागम, अर्थागम और तदुभयागम (सूत्रागम-अर्थागम)। इस श्रुतज्ञान सम्बन्धी मैंने कोई अतिचार किया हो, जैसे—आगम पाठ को आगे-पीछे किया हो (पढा हो) मूलपाठ में अन्यपाठ का मिश्रण किया हो, अक्षरों की न्यूनाधिकता की हो, पदों की न्यूनता की हो, सूत्रपाठ का विराम, घोष और संबन्ध रहित उच्चारण किया हो, ज्ञान को उचित रूप में न दिया हो—पढाया हो, ज्ञान को विधि-सहित ग्रहण न किया हो, अकाल में स्वाध्याय किया हो, काल में स्वाध्याय न किया हो, अस्वाध्यायी अवस्था में स्वाध्याय किया हो, स्वाध्यायी में स्वाध्याय न किया हो—इस प्रकार मैंने कोई अतिक्रमण किया हो, उसका दुष्कृत निष्फल हो।

२. दंसणाइयार-सुत्तं

अरहंतो महदेवो, जावज्जीवं सुसाहुणगुरुणो।
जिणपण्णत्तं तत्तं इय सम्मत्तं मए गहियं॥

एअस्स सम्मत्तस्स पंच अइयाना पेयाला जाणियव्वा न समायरियव्वा तं जहा— संका कंखा वितिगिच्छा परपासंडपसंसा परपासंडसथवो। जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
अर्हत्	अर्हत्
मम	मेरे
देवः	देव हैं
यावज्जीवं	जीवन पर्यन्त
सुसाधवः	सुसाधु
गुरवः	मेरे गुरु हैं,
जिनप्रज्ञप्तं	जिनेश्वर द्वारा जो प्ररूपित है
तत्त्वं	वह मेरा तत्त्व है
इति	यह
सम्यक्त्वं	सम्यक्त्व
मया	मैंने
गृहीतम् ।	ग्रहण किया है ।
एतस्य	इस
सम्यक्त्वस्य	सम्यक्त्व के
पञ्च	पांच
अतिचाराः	अतिचार
'पेयाल।'	प्रधान
ज्ञातव्याः	जानने योग्य
न समाचरितव्याः	नहीं आचरने योग्य
तद् यथा—	जैसे—
शंका	लक्ष्य के प्रति संदेह
कांक्षा	लक्ष्य के विपरीत दृष्टिकोण के प्रति अनुरक्ति
विचिकित्सा	लक्ष्यपूर्ति के साधनों के प्रति संशयशीलता
परपाषण्डप्रशंसा	लक्ष्य के प्रतिकूल चलने वालों की प्रशंसा
परपाषण्डसंस्तवः	लक्ष्य के प्रतिकूल चलने वालों का परिचय ।
यो	जो
मया	मैंने
दैवसिकः	दैवसिक
अतिचारः	अतिचार
कृतः	किया हो

तस्य	उससे संबंधित
मिथ्या	निष्फल हो
मे	मेरा
दुष्कृतम् ।	दुष्कृत ।

भावार्थ

सम्यक्त्व का स्वरूप—अर्हत् मेरे देव हैं। जीवन पर्यन्त सुसाधु मेरे गुरु हैं और जिनेश्वर द्वारा जो प्ररूपित तत्त्व है वह मेरा धर्म है। यह सम्यक्त्व मैंने ग्रहण किया है।

सम्यक्त्व के पांच अतिचार—

लक्ष्य के प्रति संदेह, लक्ष्य के विपरीत दृष्टिकोण के प्रति अनुरक्ति, लक्ष्यपूर्ति के साधनों (ज्ञान, दर्शन, चारित्र) के प्रति संदेहशीलता, विपरीत लक्ष्य वालों की प्रशंसा और उनसे परिचय।

सम्यक्त्व के ये अतिचार ज्ञातव्य हैं, आचरणीय नहीं हैं। यदि जान-अनजान में सम्यक्त्व से संबधित मैंने कोई दोष का सेवन किया हो तो मेरा वह दुष्कृत निष्फल हो।

३. तस्स सव्वस्स सुत्तं

तस्स सव्वस्स देवसियस्स अइयारस्स दुच्चिंतिय-दुब्भासिय-दुच्चिट्ठियस्स आलोयंतो पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
तस्य	उस
सर्वस्य	सर्व
दैवसिकस्य	दैवसिक
अतिचारस्य	अतिचार की
दुश्चिंतित-दुर्भाषित-दुश्चेष्टितस्य	दुश्चिंतन, दुर्भाषित और दुश्चेष्टा की
आलोचमानः	आलोचना करता हुआ
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं,
निंदामि	निंदा करता हूं,
गर्हे	गर्हा करता हूं,
आत्मानं	अपनी आत्मा (शरीर) का
व्युत्सृजामि।	त्याग करता हूं।

भावार्थ

मैं सभी प्रकार के मानसिक, वाचिक और कायिक अतिचार की आलोचना, प्रतिक्रमण, निंदा और गर्हा करता हूं तथा अपने आपको उससे पृथक् करता हूं।

४. नमुक्कार-सुत्तं[1]

५. सामाइय-सुत्तं[2]

६. मंगल-सुत्तं

चत्तारि मंगलं—अरहंता मंगलं सिद्धा मंगलं साहू मंगलं केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पवज्जामि अरहंते सरणं पवज्जामि सिद्धे सरणं पवज्जामि साहू सरणं पवज्जामि केवलिपण्णत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि।

संस्कृत छाया	**शब्दार्थ**
चत्वारः मंगलं	चार मंगल हैं—
अर्हन्तो मंगलं	अर्हत् मंगल हैं
सिद्धा मंगलं	सिद्ध मंगल हैं
साधवः मंगलं	साधु मंगल हैं
केवलिप्रज्ञप्तो धर्मो मंगलं	केवली द्वारा प्रज्ञप्त धर्म मंगल है।
चत्वारः लोकोत्तमाः—	चार लोकोत्तम हैं—
अर्हन्तो लोकोत्तमाः	अर्हत् लोकोत्तम हैं,
सिद्धाः लोकोत्तमाः	सिद्ध लोकोत्तम हैं,
साधवः लोकोत्तमाः	साधु लोकोत्तम हैं,
केवलिप्रज्ञप्तो धर्मो लोकोत्तमः	केवली द्वारा प्रज्ञप्त धर्म लोकोत्तम है।
चतुरः शरणं प्रपद्ये—	चार की शरण स्वीकार करता हूं—
अर्हतः शरणं प्रपद्ये	अर्हतों की शरण स्वीकार करता हूं,
सिद्धान् शरणं प्रपद्ये	सिद्धों की शरण स्वीकार करता हूं,
साधून् शरणं प्रपद्ये	साधुओं की शरण स्वीकार करता हूं,
केवलिप्रज्ञप्तं धर्मं शरणं प्रपद्ये	केवली द्वारा प्रज्ञप्त धर्म की शरण स्वीकार करता हूं।

१,२. देखें—पहला प्रकरण।

७. पडिक्कमण-सुत्तं

इच्छामि पडिक्कमिउं जो मे देवसिओ अइयारो कओ काइओ वाइओ माणसिओ उस्सुत्तो उम्मग्गो अकप्पो अकरणिज्जो दुज्झाओ दुव्विचिंतिओ अणायारो अणिच्छियव्वो असमणपाउग्गो नाणे दंसणे चरित्ते सुए सामाइए तिण्हं गुत्तीणं चउण्हं कसायाणं पंचण्हं महव्वयाणं छण्हं जीवनिकायाणं सत्तण्हं पिंडेसणाणं अट्ठण्हं पवयणमाऊणं नवण्हं बंभचेरगुत्तीणं दसविहे समणधम्मे समणाणं जोगाणं जं खंडियं जं विराहियं तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
इच्छामि	इच्छा करता हूं
प्रतिक्रमितुं	प्रतिक्रमण करने की
यो	जो
मयो	मैंने
दैवसिकः	दिवस संबंधी
अतिचारः	अतिचार
कृतः	किया—
कायिकः	कायिक
वाचिकः	वाचिक
मानसिकः	मानसिक
उत्सूत्रः	आगम-विरुद्ध
उन्मार्गः	मार्ग के प्रतिकूल
अकल्प्यः	विधि के विरुद्ध
अकरणीयः	अकरणीय
दुर्ध्यातः	अशुभ ध्यान
दुर्विचिन्तितः	दुश्चिन्तन
अनाचारः	अनाचार
अनेष्टव्यः	अवांछनीय
अश्रमणप्रायोग्यः	श्रमण के लिए अयोग्य
ज्ञाने	ज्ञान
दर्शने	दर्शन
चारित्रे	चारित्र
श्रुते	श्रुत
सामायिके	सामायिक

तिसृषु गुप्तिषु	तीन गुप्ति[1]
चतुर्षु कषायेषु	चार कषाय[2]
पञ्चसु महाव्रतेषु	पांच महाव्रत[3]
षट्सु जीवनिकायेषु	छह जीवनिकाय[4]
सप्तसु पिण्डैषणासु	सात पिण्डैषणा[5]
अष्टसु प्रवचनमातृषु	आठ प्रवचनमाता[6]
नवसु ब्रह्मचर्यगुप्तिषु	नौ ब्रह्मचर्यगुप्ति[7]
दशविधे श्रमणधर्मे	दसविध श्रमणधर्म में[8]
श्रमणानां	श्रमणों की
योगानां	प्रवृत्तियों की
यत्	जो

---

१. **तीन गुप्तियां**—मनोगुप्ति, वाग्गुप्ति, कायगुप्ति।

२. **चार कषाय**—क्रोध, मान, माया, लोभ।

३. **पांच महाव्रत**—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।

४. **षड्जीवनिकाय**—पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, और त्रसकाय।

५. **सात पिण्डैषणाएं**—संसृष्ट, असंसृष्ट, उद्धृत, अल्पलेपा, अवगृहीत, प्रगृहीत, उज्झित।

६. **आठ प्रवचनमाताएं**—पांच समितियां, तीन गुप्तियां।

७. **नौ ब्रह्मचर्यगुप्तियां**—

१. निर्गन्थ स्त्री, पशु और नपुंसक से आकीर्ण शयन और आसन का प्रयोग न करे।

२. स्त्रियों के बीच कथा न कहे।

३. स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे।

४. स्त्रियों की मनोहर और मनोरम इन्द्रियों को दृष्टि गड़ाकर न देखे।

५. स्त्रियों के कूजन, रोदन, गीत, हास्य, विलाप आदि के शब्द न सुने।

६. पूर्व-क्रीडाओं का अनुस्मरण न करे।

७. प्रणीत आहार न करे।

८. मात्रा से अधिक न खाए और न पीए।

९. विभूषा न करे।

८. **दस प्रकार का श्रमण-धर्म**—क्षांति, मुक्ति, आर्जव, मार्दव, लाघव, सत्य, संयम, तप, त्याग, ब्रह्मचर्य।

खण्डितं	अखंड आराधना न की हो
यद्	जो
विराधितं	विराधना की हो
तस्य	उससे सम्बन्धित
मिथ्या	निष्फल हो
मे	मेरा
दुष्कृतम् ।	दुष्कृत ।

भावार्थ

मैं अपने द्वारा किए हुए दैवसिक अतिचार के प्रतिक्रमण की इच्छा करता हूं, भले वह अतिचार कायिक, वाचिक या मानसिक हो। मैंने उत्सूत्र की प्ररूपणा की हो, मोक्षमार्ग के प्रतिकूल मार्ग का प्रतिपादन किया हो, विधि के विरुद्ध आचरण किया हो, अकरणीय कार्य किया हो, अशुभ ध्यान —आर्त्त-रौद्र ध्यान किया हो, असद् चिंतन किया हो, अनाचरणीय और अवांछनीय का आचरण किया हो, श्रमण के लिए अयोग्य कार्य का आचरण किया हो, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, श्रुत और सामायिक के विषय में तथा तीन गुप्ति, चार कषाय, पांच महाव्रत, षड् जीवनिकाय, सात पिण्डैषणा, आठ प्रवचनमाता, नौ ब्रह्मचर्यगुप्ति तथा दस प्रकार के श्रमण धर्म में होने वाले श्रमण योगों की अखंड आराधना न की हो, विराधना की हो तो उससे संबंधित मेरा दुष्कृत निष्फल हो।

८. इरियावहिय-सुत्तं

इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए विराहणाए गमणागमणे पाणक्कमणे बीयक्कमणे हरियक्कमणे ओसा-उत्तिंग-पणग-दगमट्टी-मक्कडासंताणा-संकमणे जे मे जीवा विराहिया एगिंदिया बेइंदिया तेइंदिया चउरिंदिया पंचिंदिया अभिहया वत्तिया लेसिया संघाइया संघट्टिया परियाविया किलामिया उद्दविया ठाणाओ ठाणं संकामिया जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

संस्कृत छाया	**शब्दार्थ**
इच्छामि	इच्छा करता हूं
प्रतिक्रमितुं	प्रतिक्रमण करने की
ऐर्यापथिक्या	ईर्यापथ संबंधी
विराधनया	विराधना के लिए
गमनागमने	जाने-आने में
प्राणक्रमणे	प्राणियों को लांघते समय

बीजक्रमणे	बीजों को लांघते समय
हरितक्रमणे	हरियाली को लांघते समय
अवश्याय-	ओस
उत्तिंग-	कीटिकानगर
पनक-	फफूंदी
दगमृत्तिका-	कीचड़ (और)
मर्कटकसन्तानक-	मकड़ी के जाले का
संक्रमणे	संक्रमण करते समय
ये इमे	जो इन
जीवा विराधिताः	जीवों की विराधना की हो
एकेन्द्रियाः	एक इन्द्रिय वाले
द्वीन्द्रियाः	दो इन्द्रिय वाले
त्रीन्द्रियाः	तीन इन्द्रिय वाले
चतुरिन्द्रियाः	चार इन्द्रिय वाले
पंचेन्द्रियाः	पांच इन्द्रिय वाले जीव
अभिहताः	सामने आ रहे हों, उन्हें हत-प्रहत किया हो
वर्तिताः	उनकी दिशा बदली हो
लेशिताः[1]	उन्हें चोट पहुंचाई हो
संघातिताः[2]	उन्हें इकट्ठा किया हो
संघट्टिताः	उन्हें हिलाया-डुलाया हो
परितापिताः	उन्हें परितप्त किया हो, सताया हो
क्लामिताः	उन्हें क्लान्त किया हो, कष्ट दिया हो
उद्द्रोताः	उन्हें उत्पीड़ित किया हो
स्थानात स्थानं संक्रामिताः	उनका स्थानान्तरण किया हो
जीवताद् व्यपरोपिताः	उनको मार डाला हो
तस्य	उससे संबंधित
मिथ्या	निष्फल हो
मे	मेरा
दुष्कृतम् ।	दुष्कृत ।

भावार्थ

मैं चलते फिरते समय होने वाले अतिचारों के लिए प्रतिक्रमण करना

---

१. लिश्—To hurt (Apte's Sanskrit English Dictionary)

२. संघातिता—अन्योऽन्यं गात्रैरेकत्र लगिताः ।

चाहता हूं —प्राण, बीज और हरितकाय का अतिक्रमण तथा ओस, चींटियों के बिलों, फफुंदी, कीचड़ और मकड़ी के जालों का संक्रमण करते समय जो इन जीवों की विराधना की हो, सामने आते हुए एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय जीवों को हत-प्रतिहत किया हो, उनकी दिशा बदली हो, उन्हें चोट पहुंचाई हो, इकट्ठा किया हो, हिलाया-डुलाया हो, सताया हो, क्लान्त किया हो, उत्पीड़ित किया हो, स्थानान्तरित किया हो और उन्हें मार डाला हो तो उससे संबंधित मेरा दुष्कृत निष्फल हो।

९. सेज्जा-अइयार-पडिक्कमण-सुत्तं

इच्छामि पडिक्कमिउं पगामसेज्जाए निगामसेज्जाए उव्वट्टणाए परिवट्टणाए आउंटणाए पसारणाए छप्पइयसंघट्टणाए कूइए कक्कराइए छीए जंभाइए आमोसे ससरक्खामोसे, आउलमाउलाए सोयणवत्तिआए इत्थीविप्परियासिआए[२] दिट्ठिविप्परियासिआए मणविप्परियासिआए पाणभोयणविप्परियासिआए तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
इच्छामि	इच्छा करता हूं।
प्रतिक्रमितुं	प्रतिक्रमण करने की
प्रकामशय्यायां	अधिक सोने
निकामशय्यायां	जब इच्छा हुई तब सोने या बार-बार सोने
उद्वर्तनायां	उठने
परिवर्तनायां	करवट लेने
आकुंचनायां	शरीर को संकुचित करने और
प्रसारणायां	फैलाने
षट्पदिकासंघट्टनायां	जूं को इधर-उधर करने
कूजिते	नींद में बोलने
'कक्कराइए'	दांत पीसने
क्षुते	छींक लेने
जृम्भिते	जम्हाई लेने

१. उद्वर्तन और परिवर्तन—ये दोनों करवट लेने के अर्थ में हैं, किन्तु उद्वर्तन का एक अर्थ उठना भी है। यहां यही अर्थ इष्ट है।

२. पुरिसविप्परियासियाए।

आमर्शे	किसी का स्पर्श करने (तथा)
सरजस्कामर्शे	सचित्त रजयुक्त वस्तु का स्पर्श करने में अतिक्रमण किया हो।
आकुलाकुलायां	अत्यन्त आकुलता
स्वप्नप्रात्ययिक्यां	स्वप्न हेतुक
स्त्रीवैपर्यासिक्यां	स्त्री के प्रति कामराग
दृष्टिवैपर्यासिक्यां	दृष्टिराग
मनोवैपर्यासिक्यां	मनोराग (तथा)
पान-भोजन-वैपर्यासिक्यां	पान-भोजन विषयक अन्यथा भाव (किया हो)
तस्य	(तो) उससे सम्बन्धित
मिथ्या	निष्फल हो
मे	मेरा
दुष्कृतम्।	दुष्कृत।

भावार्थ

मैं प्रतिक्रमण करना चाहता हूं—अतिमात्र नींद लेने में, जब इच्छा हुई तब नींद लेने में या बार-बार नींद लेने में, उठने-बैठने में, करवट लेने में, शरीर को सिकोड़ने-फैलाने में, जूं को इधर-उधर करने में, नींद में बोलने और दांत पीसने में, छींक और जम्हाई लेने में, किसी का स्पर्श करने में तथा सचित्त रजयुक्त वस्तु का स्पर्श करने में अतिचार किया हो, स्वप्न हेतुक आकुल-व्याकुलता, स्त्री-विषयक कामराग, दृष्टि राग, मनोराग और खाने-पीने के विषय में अन्यथा भाव किया हो तो उससे सम्बन्धित मेरा दुष्कृत निष्फल हो।

१०. गोयर-अइयार-पडिक्कमण-सुत्तं

पडिक्कमामि गोयरचरिआए भिक्खायरिआए उग्घाड-कवाड-उग्घाडणाए साणा-वच्छा-दारा-संघट्टणाए मंडी-पाहुडियाए बलि-पाहुडियाए ठवणा-पाहुडियाए संकिए सहसागारे अणेसणाए पाण-भोयणाए बीयभोयणाए हरियभोयणाए पच्छाकम्मियाए पुरेकम्मियाए अदिट्ठहडाए दग-संसट्ठहडाए रय-संसट्ठहडाए परिसाडणियाए पारिट्ठावणियाए ओहासणभिक्खाए जं उग्गमेणं उप्पायणेसणाए अपरिसुद्धं पडिग्गहियं परिभुत्तं वा जं न परिट्ठवियं तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
गोचरचर्यायां	गोचरचर्या
भिक्षाचर्यायां	भिक्षाचर्या में
'उग्घाड[1]-कपाट-उग्घाडणाए'	बंद कपाट को खोला हो,
श्वक-वत्सक-दारक-सघट्टनायां	कुत्ते, बछड़े और बच्चे को इधर-उधर किया हो,
मण्डीप्राभृतिक्यां	पकाये हुए भोजन में से निकाले हुए प्रथम कवल की भिक्षा ली हो,
बलिप्राभृतिक्यां	देवपूजा के लिए तैयार किया हुआ भोजन लिया हो,
स्थापनाप्राभृतिक्यां	स्थापित भोजन लिया हो,
शंकिते	शंकित आहार लिया हो,
सहसाकारे	बिना सोचे जल्दबाजी में लिया हो,
अनैषणायां	बिना एषणा—पूछताछ किए लिया हो,
प्राणभोजने	प्राणयुक्त भोजन लिया हो,
बीजभोजने	बीजयुक्त भोजन लिया हो,
हरितभोजने	हरियाली (सचित वनस्पति)-युक्त भोजन लिया हो,
पश्चात्कार्मिक्यां	पश्चात्कर्म-युक्त भोजन लिया हो,
पुरःकार्मिक्यां	पुरःकर्म-युक्त भोजन लिया हो,
अदृष्टाहृते	बिना देखे तथा ऊपर से उतारकर लाई हुई वस्तु ली हो,
दकसंसृष्टाहृते	सचित पानी से स्पृष्ट लाई हुई वस्तु ली हो,
रजःसंसृष्टाहृते	सचित रजों से स्पृष्ट लाई हुई वस्तु ली हो,
पारिशाटनिक्यां	भूमि पर गिराते-गिराते दी जाने वाली वस्तु ली हो,
पारिस्थापनिक्यां	परिष्ठापनयोग्य वस्तु ली हो,
अवभाषणभिक्षायां	विशिष्ट द्रव्य को मांगकर लिया हो (तथा)

१. 'उग्घाड़' देशी शब्द है। इसका अर्थ है—ऐसा बंद कपाट जिसमें ताला या कूंटा न हो, जिसे साधारणतया खुला हुआ ही कहा जाता है और राजस्थानी भाषा में 'ओढाल्योडो' कहा जाता है।

यत् उद्गमेन	जो उद्गम
उत्पादनैषणाभ्यां	उत्पादन और एषणा दोष के द्वारा
अपरिशुद्धं	अपरिशुद्ध
प्रतिगृहीतं	(आहार) ग्रहण किया हो,
परिभुक्तं वा	अथवा परिभोग किया हो,
यन्न	जिसका नहीं
परिष्ठापितं	परिष्ठापन किया हो
तस्य	उस सम्बन्धी
मिथ्या	निष्फल हो
मे	मेरा
दुष्कृतम् ।	दुष्कृत (पाप) ।

भावार्थ

मैं गोचरचर्या—गाय की भांति अनेक स्थानों से थोड़ा-थोड़ा लेने वाली—भिक्षाचर्या से सम्बन्धित अतिचारों का प्रतिक्रमण करता हूं—बंद किवाड़ को खोला हो, कुत्ते, बछड़े और बच्चे को इधर-उधर किया हो, पकाये हुये भोजन में से निकाले गए प्रथम ग्रास की भिक्षा ली हो, देवपूजा के लिए तैयार किया हुआ भोजन लिया हो, भिक्षाचर आदि याचकों के लिए स्थापित भोजन लिया हो, शंका-सहित आहार लिया हो, बिना सोचे शीघ्रता में आहार लिया हो, एषणा—पूछताछ किए बिना आहार लिया हो, प्राण, बीज और हरितयुक्त आहार लिया हो, भिक्षा देने के पश्चात् उसके निमित्त से हस्त-प्रक्षालन आदि आरंभ किया जाए वैसी भिक्षा ली हो, भिक्षा देने के पूर्व उसके निमित्त से आरम्भ किया जाए वैसी भिक्षा ली हो, अनदेखे लाई हुई भिक्षा ली हो, सचित्त जल से स्पृष्ट वस्तु को लाकर दी जाने वाली भिक्षा ली हो, सचित रज से स्पृष्ट वस्तु को लाकर दी जाने वाली भिक्षा ली हो, भूमि पर गिराते-गिराते दी जाने वाली भिक्षा ली हो, खाने-पीने के अयोग्य वस्तु ली हो, विशिष्ट भोज्य-पदार्थ मंगाकर लिए हों, उद्गम, उत्पादन और एषणा दोषों से युक्त आहार लिया हो, खाया हो, उसका परिष्ठापन न किया हो, उस सम्बन्धी मेरा दुष्कृत निष्फल हो ।

११. सज्झायादि-अइयार-पडिक्कमण-सुत्तं

पडिक्कमामि चाउकालं सज्झायस्स अकरणयाए उभओकालं भंडोवगरणस्स अप्पडिलेहणाए दुप्पडिलेहणाए अप्पमज्जणाए दुप्पमज्जणाए अइक्कमे वइक्कमे अइयारे अणायारे जो मे देवसिओ अइयारो कओ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं।
चतुष्कालं	चातुष्कालिक
स्वाध्यायस्य	स्वाध्याय के
अकरणे	न करने
उभयकालं	दोनों समय
भाण्डोपकरणस्य	पात्र-वस्त्र आदि उपकरण का
अप्रतिलेखनायां	प्रतिलेखन न करने
दुष्प्रतिलेखनायां	अविधिपूर्वक प्रतिलेखन करने
अप्रमार्जनायां	अप्रमार्जन करने
दुष्प्रमार्जनायां	अविधिपूर्वक प्रमार्जन करने
अतिक्रमे	अतिक्रम
व्यतिक्रमे	व्यतिक्रम
अतिचारे	अतिचार
अनाचारे	अनाचार में
यो	जो
मया	मैंने
दैवसिकः	दैवसिक
अतिचारः	अतिचार
कृतः	किया हो
तस्य	उससे संबंधित
मिथ्या	निष्फल हो
मे	मेरा
दुत्कृतम्।	दुष्कृत।

भावार्थ

मैं प्रतिक्रमण करता हूं—

चातुष्कालिक (दिन के प्रथम और अन्तिम प्रहर, तथा रात के प्रथम और अन्तिम प्रहर) स्वाध्याय न किया हो, दिन के प्रथम तथा अन्तिम प्रहर में पात्र, वस्त्र आदि उपकरणों का प्रतिलेखन न किया हो अथवा अविधि से किया हो, स्थान आदि का प्रमार्जन न किया हो अथवा अविधि से किया हो,

अतिक्रम—दोष सेवन के लिए मानसिक संकल्प किया हो,

व्यतिक्रम—दोष-सेवन के लिए प्रस्थान किया हो,

अतिचार—दोष-सेवन के लिए तत्परता की हो, सामग्री जुटा ली हो,

अनाचार—दोष का आसेवन किया हो,

इस विषय में जो मैंने दिवस-संबंधी अतिचार किया हो तो उससे संबंधित मेरा दुष्कृत निष्फल हो।

१२. एगविधादि-अइयार-पडिक्कमण-सुत्तं

पडिक्कमामि एगविहे असंजमे।

पडिक्कमामि दोहिं बंधणेहिं रागबंधणेणं दोसबंधणेणं।

पडिक्कमामि तिहिं दंडेहिं—मणदंडेणं वइदडेणं कायदंडेणं।

पडिक्कमामि तिहिं गुत्तीहिं—मणगुत्तीए वइगुत्तीए कायगुत्तीए।

पडिक्कमामि तिहिं सल्लेहिं—मायासल्लेणं निआणसल्लेणं मिच्छादंसणसल्लेणं।

पडिक्कमामि तिहिं गारवेहिं—इड्ढीगारवेणं रसागारवेणं सायागारवेणं।

पडिक्कमामि तिहिं विराहणाहिं—नाणविराहणाए दंसण-विराहणाए चरित्तविराहणाए।

पडिक्कमामि चउहिं कसाएहिं—कोहकसाएणं माणकसाएणं मायाकसाएणं लोभकसाएणं।

पडिक्कमामि चउहिं सण्णाहिं—आहारसण्णाए भयसण्णाए मेहुणसण्णाए परिग्गहसण्णाए।

पडिक्कमामि चउहिं विकहाहिं—इत्थिकहाए भत्तकहाए देसकहाए रायकहाए।

पडिक्कमामि चउहिं झाणेहिं—अट्टेणं झाणेणं रुद्देणं झाणेणं धम्मेणं झाणे णंसुक्केणं झाणेणं।

पडिक्कमामि पंचहिं किरियाहिं—काइयाए अहिगरणियाए पाओसियाए पारितावणियाए पाणाइवायकिरियाए।

पडिक्कमामि पंचहिं कामगुणेहिं—सद्देणं रूवेणं गंधेणं रसेणं फासेणं।

पडिक्कमामि पंचहिं महव्वएहिं—पाणाइवायाओ वेरमणं मुसावायाओ वेरमणं अदिन्नादाणाओ वेरमणं मेहुणाओ वेरमणं परिग्गहाओ वेरमणं।

पडिक्कमामि पंचहिं समिईहिं—इरियासमिईए भासासमिईए एसणासमिईए आयाणभंडमत्तणिक्खेवणासमिईए उच्चार-पासवण-

खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिईए ।

पडिक्कमामि छहिं जीवनिकाएहिं—पुढविकाएणं आउकाएणं तेउकाएणं वाउकाएणं वणस्सइकाएणं तसकाएणं ।

पडिक्कमामि छहिं लेसाहिं—किण्हलेसाए नीललेसाए काउलेसाए तेउलेसाए पम्हलेसाए सुक्कलेसाए ।

सत्तहिं भयट्ठाणेहिं । अट्ठहिं मयट्ठाणेहिं । नवहिं बंभचेरगुत्तीहिं । दसविहे समणधम्मे । एगारसहिं उवासगपडिमाहिं । बारसहिं भिक्खुपडिमाहिं । तेरसहिं किरियाट्ठाणेहिं । चउद्दसहिं भूयगामेहिं । पन्नरसहिं परमाहम्मिएहिं । सोलसहिं गाहासोलएहिं । सत्तरसविहे असंजमे । अट्ठारसविहे अबंभे । एगूणवीसाए नायज्झयणेहिं । वीसाए असमाहिट्ठारणेहिं । एगवीसाए सबलेहिं । बावीसाए परीसहेहिं । तेवीसाए सुयगडज्झयणेहिं । चउवीसाए देवेहिं । पंचवीसाए भावणाहिं । छव्वीसाए दसाकप्प-ववहाराणं उद्देसणकालेहिं । सत्तावीसाए अणगारगुणेहिं । अट्ठावीसतिविहे आयारपकप्पे एगुणतीसाए पावसुयपसंगेहिं । तीसाए मोहणीयट्ठाणेहिं ऐगतीसाए सिद्धाइगुणेहिं । बत्तीसाए जोगसंगहेहिं । तेत्तीसाए आसायणाहिं—अरहंताणं आसायणाए सिद्धाणं आसायणाए आयरियाणं आसायणाए उवज्झायाणं आसायणाए साहूणं आसायणाए साहूणीणं आसायणाए सावयाणं आसायणाए सवियाणं आसायणाए देवाणं आसायणाए देवीणं आसायणाए इहलोगस्स आसायणाए परलोगस्स आसायणाए केवलिपण्णत्तस्स धम्मस्स आसायणाए सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स आसायणाए सव्वपाणभूयजीवसत्ताणं आसायणाए कालस्स आसायणाए सुयस्स आसायणाए सुयदेवयाए आसायणाए वायणायरियस्स आसायणाए जं वाइद्धं वच्चामेलियं हीणक्खरं अच्चक्खरं पयहीणं विणयहीणं घोसहीणं जोगहीणं सुट्ठुन्दिनं दुट्ठपडिच्छियं अकाले कओ सज्झाओ काले न कओ सज्झाओ असज्झाइए सज्झाइयं सज्झाइए न सज्झाइयं, तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

संस्कृत छाया	**शब्दार्थ**
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं ।
एकविधे	एक प्रकार के
असंयमे	असंयम में ।[1]

१. 'इस विषय में मैंने कोई अतिचार किया हो तो उससे सम्बंधित मेरा दुष्कृत निष्फल हो'—यह सर्वत्र गम्य है ।

प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
द्वयोर्बन्धनयोः	दो प्रकार के बन्धनों में —
रागबन्धने	राग-बन्धन और
दोषबन्धने	द्वेष-बन्धन में।
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
त्रिषु दण्डेषु	तीन दण्डो में—
मनोदण्डे	मनःदण्ड
वाग्दण्डे	वचनदण्ड और
कायदण्डे	कायदण्ड में।
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
तिसृषु गुप्तिषु	तीन गुप्तियों में—
मनोगुप्तौ	मनगुप्ति
वाग्गुप्तौ	वचनगुप्ति और
कायगुप्तौ	कायगुप्ति में।
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
त्रिषु शल्येषु	तीन शल्यों में—
मायाशल्ये	मायाशल्य
निदानशल्ये	निदानशल्य और
मिथ्यादर्शनशल्ये	मिथ्यादर्शनशल्य में।
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
त्रिषु गौरवेषु	तीन प्रकार के गौरव में—
ऋद्धिगौरवे	ऋद्धिगौरव
रसगौरवे	रसगौरव और
सातगौरवे	सातागौरव में।
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
तिसृषु विराधनासु	तीन प्रकार की विराधनाओं में—
ज्ञानविराधनायां	ज्ञान की विराधना
दर्शनविराधनायां	दर्शन की विराधना और
चारित्रविराधनायां	चारित्र की विराधना में।
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
चतुर्षु कषायेषु	चार प्रकार के कषायों में—
क्रोधकषाये	क्रोध कषाय
मानकषाये	मान कषाय
मायाकषाये	माया कषाय और
लोभकषाये	लोभ कषाय में।

प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
चतसृषु संज्ञासु	चार प्रकार की संज्ञाओं में—
आहारसंज्ञायां	आहारसंज्ञा
भयसंज्ञायां	भयसंज्ञा
मैथुनसंज्ञायां	मैथुनसंज्ञा और
परिग्रहसंज्ञायां	परिग्रहसंज्ञा में।
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
चतसृषु विकथासु	चार प्रकार की विकथाओं में—
स्त्रीकथायां	स्त्री-सम्बन्धी कथा
भक्तकथायां	भोजन-सम्बन्धी कथा
देशकथायां	देश-सम्बन्धी कथा और
राजकथायां	राजा या राज्य-सम्बन्धी कथा में।
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
चतुर्षु ध्यानेषु	चार प्रकार के ध्यान में—
आर्त्तध्याने	आर्त्तध्यान
रौद्रध्याने	रौद्रध्यान
धर्मध्याने	धर्म्यध्यान और
शुक्लध्याने	शुक्लध्यान में।
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
पञ्चसु क्रियासु	पांच प्रकार की क्रियाओं में—
कायिक्यां	शरीर से होने वाली क्रिया
आधिकरणिक्यां	शस्त्र आदि हिंसक उपकरणों वाली अथवा कलह सम्बन्धी क्रिया
प्रादोषिक्यां	प्रद्वेष से होने वाली क्रिया
पारितापनिक्यां	दूसरों को परितप्त करने की क्रिया और
प्राणातिपातक्रियायां	जीवहिंसायुक्त क्रिया में।
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
पञ्चसु कामगुणेषु	पांच प्रकार के काम-विषयों में—
शब्दे	शब्द
रूपे	रूप
गंधे	गन्ध
रसे	रस और
स्पर्शे	स्पर्श में।
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं

पञ्चसु महाव्रतेषु	पांच महाव्रतों में—
प्राणातिपाताद् विरमणं	प्राणातिपात-विरमण
मृषावादाद् विरमणं	मृषावाद-विरमण
अदत्तादानाद् विरमणं	अदत्तादान-विरमण
मैथुनाद् विरमणं	मैथुन-विरमण और
परिग्रहाद् विरमणं	परिग्रह-विरमण में।
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
पञ्चसु समितिषु	पांच समितियों में—
ईर्यासमितौ	ईर्या समिति
भाषासमितौ	भाषा समिति
एषणासमितौ	एषणा समिति
आदानभाण्डामत्रनिक्षेपणासमितौ	उपकरण, पात्र आदि लेने तथा रखने की समिति
उच्चारप्रस्रवणक्ष्वेलसिंघाण-जल्लपारिस्थापनिकीसमितौ	मल, मूत्र, कफ, श्लेष्मा और मैल के व्युत्सर्ग की समिति में।
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
षट्सु जीवनिकायेषु	छह जीवनिकायों में—
पृथ्वीकाये	पृथ्वीकाय
अप्काये	अप्काय
तेजस्काये	तेजस्काय
वायुकाये	वायुकाय
वनस्पतिकाये	वनस्पतिकाय और
त्रसकाये	त्रसकाय में।
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
षट्सु लेश्यासु	छह लेश्याओं में—
कृष्णलेश्यायां	कृष्णलेश्या
नीललेश्यायां	नीललेश्या
कापोतलेश्यायां	कापोतलेश्या
तेजोलेश्यायां	तेजोलेश्या
पद्मलेश्यायां	पद्मलेश्या और
शुक्ललेश्यायां	शुक्ललेश्या में।
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं
सप्तषु भयस्थानेषु	सात प्रकार के भय-स्थानों में।[1]
अष्टसु मदस्थानेषु	आठ प्रकार के मद-स्थानों में।[2]
नवसु ब्रह्मचर्यगुप्तिषु	नव प्रकार की ब्रह्मचर्य-गुप्तियों में।[3]

दशविधे श्रमणधर्मे	दस प्रकार के श्रमण-धर्म में।[४]
एकादशसु उपासकप्रतिमासु	ग्यारह प्रकार की उपासक-प्रतिमाओं (निर्धारित साधना-पद्धति में।[५]
द्वादशसु भिक्षुप्रतिमासु	बारह प्रकार की भिक्षु-प्रतिमाओं में।[६]
त्रयोदशसु क्रियास्थानेषु	तेरह क्रियास्थानों (कर्म-बन्ध की हेतुभूत प्रवृत्ति) में।[७]
चतुर्दशसु भूतग्रामेषु	चौदह प्रकार के जीव-समूह में।[८]
पञ्चदशसु परमाधार्मिकेषु	पन्द्रह प्रकार के परमाधार्मिक देवो में।[९]
षोडशसु गाथाषोडशकेषु	सूत्रकृतांग के सोलह अध्ययनों में।[१०]
सप्तदशविधे असंयमे	सतरह प्रकार के असंयम में।[११]
अष्टादशविधे अब्रह्मणि	अठारह प्रकार के अब्रह्मचर्य में।[१२]
एकोनविंशतौ ज्ञाताध्ययनेषु	ज्ञाताधर्मकथा के उन्नीस अध्ययनों में।[१३]
विंशतौ असमाधिस्थानेषु	बीस असमाधि स्थानों में।[१४]
एकविंशतौ शबलेषु	इक्कीस शबल दोषों में।[१५]
द्वाविंशतौ परीषहेषु	बाईस परीषहों में।[१६]
त्रयोविंशतौ सूत्रकृताध्ययनेषु	सूत्रकृतांग के तेवीस (१६+७) अध्ययनों में।[१७]
चतुर्विंशतौ देवेषु	चौबीस प्रकार के देवों में।[१८]
पञ्चविंशतौ भावनासु	पचीस भावनाओं में।[१९]
षड्विंशतौ दशाकल्पव्यवहाराणा-मुद्देशनकालेषु	दशाश्रुतस्कन्ध के दस, बृहत्कल्प के छह और व्यवहार के दस (१०+६+१०) —इन छबीस अध्ययनों में।[२०]
सप्तविंशतौ अनगारगुणेषु	अणगार के सत्ताईस गुणों में।[२१]
अष्टविंशतिविधे आचारप्रकल्पे	आचारांग के (९+१६) २५ तथा निशीथ के तीन—इस प्रकार २८ अध्ययनों में।[२२]
एकोनत्रिंशति पापश्रुतप्रसंगेषु	उनतीस प्रकार के पापश्रुतप्रसंगों में।[२३]
त्रिंशति मोहनीयस्थानेषु	मोहनीय के तीस स्थानों में।[२४]
एकत्रिंशति सिद्धादिगुणेषु	सिद्धों के इकतीस आदि-गुणों में।[२५]
द्वात्रिंशति योगसंग्रहेषु	बतीस योग-संग्रह में।[२६]
त्रयस्त्रिंशति आशातनासु	तेतीस आशातनाओं में।[२७]

टिप्पण १ से २७, देखें—प्रस्तुत अध्ययन के अन्त में, पृष्ठ ३९-५१।

अर्हतां आशातनायां	अरहंतों
सिद्धानां आशातनायां	सिद्धों
आचार्याणां आशातनायां	आचार्यों
उपाध्यायानां आशातनायां	उपध्यायों
साधूनां आशातनायां	साधुओं
साध्वीनां आशातनायां	साध्वियों
श्रावकाणां आशातनायां	श्रावकों
श्राविकाणां आशातनायां	श्राविकाओं
देवानां आशातनायां	देवों
देवीनां आशातनायां	देविओं
इहलोकस्य आशातनायां	इहलोक
परलोकस्य आशातनायां	परलोक
केवलिप्रज्ञप्तस्य धर्मस्य आशातनायां	केवलिप्रज्ञप्त धर्म
संदेवमनुष्यासुरस्य लोकस्य आशातनायां	देवलोक, मनुष्यलोक और असुरलोक
सर्वप्राणभूतजीवसत्त्वानां आशातनायां	सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्वों
कालस्य आशातनायां	काल
श्रुतस्य आशातनायां	श्रुत
श्रुतदेवताया आशातनायां	श्रुतदेवता (और)
वाचनाचार्यस्य आशातनायां	वाचनाचार्य की आशातना में
यद् व्याविद्धं	जो सूत्रपाठ को विपर्यस्त किया हो—आगे पीछे किया हो
व्यत्यामेलितं	मूलपाठ में अन्य पाठ का मिश्रण किया हो
हीनाक्षरं	अक्षरों की न्यूनता की हो
अत्यक्षरं	अक्षरों की अधिकता की हो
पदहीनं	पदों की न्यूनता की हो
विनयहीनं	विराम-रहित पढ़ा हो
घोषहीनं	घोष-रहित पढ़ा हो
योगहीनं	सम्बन्ध-रहित पढ़ा हो
सुष्ठु-अदत्तं	ज्ञान अच्छी तरह से न दिया हो
दुष्ठुप्रतीच्छितं	ज्ञान को अच्छी तरह से ग्रहण न किया हो
अकाले कृतः स्वाध्यायः	अकाल में स्वाध्याय किया हो
काले न कृतः स्वाध्यायः	काल में स्वाध्याय न किया हो
अस्वाध्यायिके स्वाधीतं	अस्वाध्यायी में स्वाध्याय किया हो

स्वाध्यायिके न स्वाधीतं	स्वाध्यायी में स्वध्याय न किया हो
तस्य	उससे सम्बन्धित
मिथ्या	निष्फल हो
मे	मेरा
दुष्कृतम् ।	दुष्कृत ।

१३. निग्गंथपावयणे थिरीकरण-सुत्तं

नमो चउवीसाए तित्थगराणं उसभादिमहावीरपज्जवसाणाणं इणमेव निग्गंथं पावयणं सच्चं अणुत्तरं केवलं पडिपुण्णं नेआउयं संसुद्धं सल्लगत्तणं सिद्धिमग्गं मुत्तिमग्गं निज्जाणमग्गं निव्वाणमग्गं अवितहमविसंधि सव्वदुक्खप्पहीणमग्गं ।

एत्थं ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति ।

तं धम्मं सद्दहामि पत्तियामि रोएमि फासेमि अणुपालेमि । तं धम्मं सद्दहंतो पत्तियंतो रोएंतो फासेंतो अणुपालंतो तस्स धम्मस्स अब्भुट्ठिओमि आराहणाए विरओमि विराहणाए—

असंजमं परियाणामि संजमं उवसंपज्जामि ।
अबंभं परियाणामि बंभं उवसंपज्जामि ।
अकप्पं परियाणामि कप्पं उवसंपज्जामि ।
अण्णाणं परियाणामि नाणं उवसंपज्जामि ।
अकिरियं परियाणामि किरियं उवसंपज्जामि ।
मिच्छत्तं परियाणामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि ।
अबोहिं परियाणामि बोहिं उवसंपज्जामि ।
अमग्गं परियाणामि मग्गं उवसंपज्जामि ।

जं संभरामि जं च न संभरामि, जं पडिक्कमामि जं च न पडिक्कमामि, तस्स सव्वस्स देवसियस्स अइयारस्स पडिक्कमामि ।

समणोहं संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खायपावकम्मो अणियाणो दिट्ठिसंपन्नो मायामोसविवज्जओ ।

अड्ढाइज्जेसु दीवसमुद्देसु पण्णरससु कम्मभूमीसु जावंति केइ साहु रयहरण-गोच्छ-पडिग्गहधरा पंचमहव्वयधरा अट्ठारससीलंग-सहस्सधरा अक्खयायारचरित्ता ते सव्वे सिरसा मणसा मत्थएण[1] वंदामि ।

---

१. मत्थएण—मत्थे अंजलि कट्टुं ।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
नमः	नमस्कार हो
चतुर्विंशतये	चौबीस
तीर्थंकरेभ्यः	तीर्थंकरों को
ऋषभादिमहावीरपर्यवसानेभ्यः	ऋषभ से लेकर महावीर तक।
इदमेव	यही
नैर्ग्रन्थं प्रवचनं	निर्ग्रन्थ प्रवचन
सत्यम्	सत्य
अनुत्तरं	अनुत्तर
केवलं	अद्वितीय
प्रतिपूर्णं	प्रतिपूर्ण
नैर्यात्रिकं	नैर्यात्रिक—मोक्ष तक पहुंचाने वाला
संशुद्धं	संशुद्ध
शल्यकर्त्तनं	शल्य को काटने वाला
सिद्धिमार्गः	सिद्धि का मार्ग
मुक्तिमार्गः	मुक्ति का मार्ग
निर्याणमार्गं	मोक्ष का मार्ग
निर्वाणमार्गः	शांति का मार्ग
अवितथम्	सत्य
अविसंधि	अविच्छिन्न (और)
सर्वदुःखप्रहाणमार्गः	समस्त दुःखों के क्षय का मार्ग है।
अत्र स्थिताः	इस निर्ग्रन्थ प्रवचन में स्थित
जीवाः	जीव
सिध्यन्ति	सिद्ध होते हैं
'बुज्झंति'	प्रशांत होते हैं
मुचयन्ते	मुक्त होते हैं
परिनिर्वान्ति	परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं
सर्वदुःखानामंतं	सब दुःखों का अन्त
कुर्वन्ति	करते हैं
तं धर्मं	उस (निर्ग्रन्थ) धर्म पर
श्रद्दधे	श्रद्धा करता हूं
प्रत्येमि	प्रतीति करता हूं
रोचे	रुचि करता हूं
स्पृशामि	उसका आचरण करता हूं
अनुपालयामि	अनुपालन करता हूं

तं धर्मं	उस धर्म पर
श्रद्दधानः	श्रद्धा करता हुआ
प्रतीयन्	प्रतीति करता हुआ
रोचमानः	रुचि करता हुआ
स्पृशन्	उसका आचरण करता हुआ
अनुपालयन्	अनुपालन करता हुआ
तस्य	उस
धर्मस्य	धर्म की
अभ्युत्थितोऽस्मि आराधनायै	आराधना के लिए अभ्युत्थित होता हूं
विरतोऽस्मि विराधनायाः	विराधना से विरत होता हूं
असंयमं परिजानामि	असंयम का प्रत्याख्यान करता हूं
संयमं उपसंपद्ये	संयम को स्वीकार करता हूं
अब्रह्म परिजानामि	अब्रह्मचर्य का प्रत्याख्यान करता हूं
ब्रह्म उपसंपद्ये	ब्रह्मचर्य को स्वीकार करता हूं
अकल्पं परिजानामि	अकरणीय का प्रत्याख्यान करता हूं
कल्पं उपसंपद्ये	करणीय को स्वीकार करता हूं
अज्ञानं परिजानामि	अज्ञान का प्रत्याख्यान करता हूं
ज्ञानं उपसंपद्ये	ज्ञान को स्वीकार करता हूं
अक्रियां परिजानामि	नास्तिकता का प्रत्याख्यान करता हूं
क्रियां उपसंपद्ये	आस्तिकता को स्वीकार करता हूं
मिथ्यात्वं परिजानामि	मिथ्यात्व का प्रत्याख्यान करता हूं
सम्यक्त्वं उपसंपद्ये	सम्यक्त्व को स्वीकार करता हूं
अबोधिं परिजानामि	अबोधि का प्रत्याख्यान करता हूं
बोधिं उपसंपद्ये	बोधि का स्वीकार करता हूं
अमार्गं परिजानामि	अमार्ग का प्रत्याख्यान करता हूं
मार्गं उपसंपद्ये	मार्ग को स्वीकार करता हूं
यत् स्मरामि	जिस (अतिचार) की मुझे स्मृति है
यच्च न स्मरामि	जिसकी मुझे स्मृति नहीं है
यत् प्रतिक्रामामि	जिसका प्रतिक्रमण करता हूं
यच्च न प्रतिक्रामामि	जिसका प्रतिक्रमण नहीं करता हूं
तस्य	उससे सम्बन्धित
सर्वस्य	सब
दैवसिकस्य	दैवसिक
अतिचारस्य	अतिचार का
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं

श्रमणोऽहं	मैं श्रमण हूं
संयत-	संयत हूं
विरत-	विरत हूं
प्रतिहत-प्रत्याख्यातपापकर्मा	मैंने अपने पापकर्मों को प्रतिहत और प्रत्याख्यात कर दिया है
अनिदानः	मैं निदान-मुक्त हूं
दृष्टिसम्पन्नः	दृष्टि-सम्पन्न हूं
मायामृषाविवर्जकः	मायामृषा का विवर्जन करनेवाला हूं
अर्द्धतृतीयेषु द्वीपसमुद्रेषु	ढाई द्वीप-समुद्रों में
पञ्चदशसु कर्मभूमिषु	पन्द्रह कर्मभूमियों में
यावन्तः	जो
केचन साधवः	कोई साधु हैं
रजोहरण-	रजोहरण-
गुच्छ-	गोच्छक-
प्रतिग्रहधराः	पात्रके धारक हैं
पञ्चमहाव्रतधराः	पांच महाव्रतों के धारक हैं
अष्टादशशीलांगसहस्रधराः	अठारह हजार शीलांगों के धारक हैं
अक्षताचारचरित्राः	अक्षत आचार और चरित्रवाले हैं
तान् सर्वान्	उन सबको
शिरसा	मस्तक से
मनसा	मन से
मस्तकेन (मस्तके अञ्जलिं कृत्वा)	ललाट से (ललाट पर अञ्जलि रखकर)
वंदे ।	वन्दना करता हूं

भावार्थ

मैं ऋषभ से लेकर महावीर तक के चौबीस तीर्थंकरों को नमस्कार करता हूं। यह निर्ग्रंथ प्रवचन ही सत्य, अनुत्तर, अद्वितीय, प्रतिपूर्ण, मोक्ष में ले जानेवाला, सर्वतः शुद्ध, माया, निदान और मिथ्यादर्शन—इन तीनों शल्यों को छिन्न करने वाला है।

यह सिद्धि, मुक्ति, निर्याण (मोक्ष), निर्वाण (शांति) का मार्ग है। यह सत्य, अविच्छिन्न और सर्व दुःखों के प्रहाण का मार्ग है।

इस निर्ग्रंथ प्रवचन में स्थित मनुष्य सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और परिनिर्वृत होते हैं तथा सब दुःखों का अन्त करते हैं।

मैं इस निर्ग्रंथ धर्म पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि करता हूं। इसका

आचरण और अनुपालन करता हूं।

इस निर्ग्रंथ धर्म पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि करता हुआ, इसका आचरण और अनुपालना करता हुआ, इस निर्ग्रंथ धर्म की आराधना के लिए अभ्युत्थित होता हूं, विराधना से विरत होता हूं।

मैं असंयम, अब्रह्म, अकल्प, अज्ञान, अक्रिया, मिथ्यात्व, अबोधि और अमार्ग का प्रत्याख्यान करता हूं तथा संयम, ब्रह्म, कल्प, ज्ञान, क्रिया, सम्यक्त्व, बोधि और मार्ग को स्वीकार करता हूं।

अतिचार की स्मृति या अस्मृति, उसके प्रतिक्रमण या अप्रतिक्रमण से सम्बन्धित सब दैवसिक अतिचार का प्रतिक्रमण करता हूं।

मैं श्रमण हूं, संयत और विरत हूं। मैंने अतीत के पापकर्मों की आलोचना की है और भविष्य में पापकर्मों का प्रत्याख्यान किया है। मैं निदान-मुक्त, दृष्टि-सपन्न और माया-मृषा का विवर्जन करने बाला हूं।

अढ़ाई द्वीप-समुद्रों और पन्द्रह कर्म-भूमियों में रजोहरण, गोच्छक और पात्र को धारण करने बाले, पंचमहाव्रती, अठारह हजार शीलांग के अभ्यासी, अक्षत आचार और चरित्र वाले जितने साधु हैं, उन सबको सिर और मन को प्रणत कर, ललाट पर अञ्जलि टिका बन्दना करता हूं।

१४. खामेमी सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मेत्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ न केणई॥
एवमहं आलोइय निंदिय गरिहिय दुगंछिय सम्मं।
तिविहेण पडिक्कंतो वंदामि जिणे चउवीसं॥

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
क्षाम्यामि	क्षमा करता हूं
सर्वजीवान्	समस्त जीवों को
सर्वे जीवाः	सभी जीव
क्षमन्तां	क्षमा करें
माम्।	मुझको।
मैत्री	मैत्री
मे	मेरी
सर्वभूतेषु	सभी प्राणियों के प्रति
वैरं	वैर
मम	मेरा
न	नहीं है
केनचित्।	किसी के साथ।
एवं	इस प्रकार

मया	मैंने
आलोचितं	आलोचना की है
निंदितं	निन्दा की है
गर्हितं	गर्हा की है
जुगुप्सितं	जुगुप्सा की है
सम्यक् ।	सम्यक् प्रकार से ।
त्रिविधेन	तीन करण तीन योग से
प्रतिक्रान्तः	प्रतिक्रान्त (प्रतिक्रमण किया हुआ) होकर
वन्दे	वन्दना करता हूं
जिनान्	जिनों को
चतुर्विंशतिम ।	चौबीस ।

भावार्थ

मैं सब जीवों को क्षमा करता हूं सब जीव मुझे क्षमा करें। सब जीवों के साथ मेरी मैत्री है। किसी के साथ मेरा वैर नहीं है।

इस प्रकार मैंने सम्यक् रूप में अतिचारों की आलोचना, निंदा, गर्हा और जुगुप्सा की है। मैं तीन करण और तीन योग से प्रतिक्रांत होकर चौबीस तीर्थंकरों को वन्दना करता हूं।

१५. इच्छामि खमासमणो……(वंदणयसुत्तं)

१६. पंचपद वंदना

१७. खामणा-सुत्तं[2]

इच्छामि खमासमणो उवट्ठिओमि अब्भितर-पक्खियं खामेउं पन्नरसण्हं दिवसाणं पन्नरसण्हं राईणं जं किंचि अपत्तियं परपत्तियं भत्ते पाणे विणये वेयावच्चे आलावे संलावे उच्चासणे समासणे अंतरभासाए उवरिभासाए जं किंचि मज्झ विणयपरिहीणं सुहुमं वा बायरं वा तुब्भे जाणह अहं न याणामि तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

संस्कृत छाया	**शब्दार्थ**
इच्छामि	चाहता हूं
क्षमाश्रमण !	हे क्षमाश्रमण !
उपस्थितोऽस्मि	उपस्थित होता हूं
आभ्यन्तर-पाक्षिकं	पक्ष के भीतर

१. परिशिष्ट २। २. यह सूत्र पाक्षिक आदि क्षमायाचना का है।

क्षमितुं	क्षमा करने के लिए।
पञ्चदशानां	पन्द्रह
दिवसानां	दिनों में
पञ्चदशानां	पन्द्रह
रात्रीणां	रात्रियों में
यत्	जो
किंचित्	कुछ
अप्रत्ययः	अविश्वास के कारण
परप्रत्ययः	दूसरे के विश्वास के कारण
भक्ते	भोजन
पाने	पानी
विनये	विनय
वैयावृत्ये	सेवा
आलापे	आलाप
संलापे	संलाप
उच्चासने	उच्च आसन
समासने	सम आसन
अन्तरभाषायां	बीच में बोलना
उपरिभाषायां	बात को काटकर वोलना
यत्	जो
किंचित्	कुछ
मम	मेरा
विनयपरिहीनं	विनयहीन व्यवहार
सूक्ष्मं वा	सूक्ष्म अथवा
बादरं वा	स्थूल
यूयं जानीथ	आप जानते हैं
अहं न जानामि	मैं नहीं जानता
तस्य	उससे सम्बन्धित
मिथ्या	निष्फल हो
मे	मेरा
दुष्कृतम्।	दुष्कृत।

भावार्थ

हे क्षमाश्रमण ! मैं पाक्षिक क्षमायाचना करना चाहता हूं, इसलिए आपके समक्ष उपस्थित हुआ हूं। इन पन्द्रह दिन-रात में अविश्वास या दूसरे

के विश्वास के कारण, भोजन, पानी, विनय, सेवा, आलाप-संलाप, बैठने-उठने, बीच में बोलने, आचार्य की बात को काट अपनी बात ऊपर रखने आदि प्रवृत्तियों में मेरे द्वारा सूक्ष्म या स्थूल—जो कुछ विनयहीन व्यवहार या आचरण हुआ हो, जिसे मैं नहीं जानता, आप जानते हैं, उन सबके लिए मैं क्षमायाचना करता हूं। उस संबंधी मेरा दुष्कृत निष्फल हो।

१८.८४ लाख जीवयोनि[1]

संदर्भ-स्थल :

१. भय के सात स्थान (समवाओ, ७।१)

भय मोहनीय कर्म की एक प्रकृति है। उसके प्रभाव से होने वाला आत्म-परिणाम भय कहलाता है। वह सात प्रकार का है—

१. इहलोकभय—सजातीय भय—जैसे मनुष्य को मनुष्य से होने वाला भय
२. परलोकभय—विजातीय भय—जैसे तिर्यञ्च, देव आदि से होने वाला भय।
३. आदानभय—धन आदि के अपहरण से होने वाला भय
४. अकस्मात् भय—बाह्य निमित्तों के बिना अपने ही विकल्पों से होने वाला भय
५. वेदना भय—पीड़ा आदि से उत्पन्न भय
६. मरण भय—मृत्यु का भय
७. आलोक भय—अकीर्ति का भय।

२. मद के आठ स्थान (समवाओ, ८।१)

१. जातिमद
२. कुलमद
३. बलमद
४. रूपमद
५. तपोमद
६. श्रुतमद
७. लाभमद
८. ऐश्वर्यमद।

३. ब्रह्मचर्य की नौ गुप्तियां (समवाओ, ९।१)

१. विविक्त शयन और आसन का सेवन करना
२. केवल स्त्रियों में धर्मोपदेश न करना
३. स्त्रियों की निषधा-स्थान का सेवन न करना
४. स्त्रियों के अवयवों को आसक्त दृष्टि से न देखना
५. प्रणीतरस—गरिष्ठ भोजन न करना

---

१. परिशिष्ट ३।

६. अतिमात्रा में आहार न करना
७. पूर्व अवस्था में आचीर्ण भोगों की स्मृति न करना
८. इन्द्रिय-विषयों तथा श्लाघा में आसक्त न होना

(हरिभद्र सूरि ने आवश्यक की टीका में इन नौ गुप्तियों में प्रथम सात को व्यत्यय से माना है और शेष दो के स्थान पर—विभूषा न करना और मैथुनरत स्त्रियों के क्वणित को न सुनना—माना है।)

४. दस प्रकार का श्रमण-धर्म (समवाओ, १०।१)

१. क्षान्ति—क्षमा, क्रोध का विवेक
२. मुक्ति - आकिञ्चन्य, लोभ का विवेक
३. आर्जव—ऋजुता, माया का विवेक
४. मार्दव—मृदुता, मन का विवेक
५. लाघव—हल्कापन, अप्रतिबद्धता
६. सत्य
७. संयम
८. तप
९. त्याग—साधर्मिक साधुओं को भोजन आदि देना
१०. ब्रह्मचर्यवास।

५. उपासक की ग्यारह प्रतिमाएं (समवाओ, ११।१)

प्रतिमा का अर्थ है—प्रतिज्ञा, अभिग्रह-विशेष। श्रमणोपासक की ग्यारह प्रतिमाएं हैं—

१. दर्शनश्रावक—यह पहली प्रतिमा है। इसका कालमान एक मास का है।
२. कृतव्रतकर्म—यह दूसरी प्रतिमा है। इसका कालमान दो मास का है।
३. कृतसामायिक— यह तीसरी प्रतिमा है। इसका कालमान तीन मास का है।
४. पोषधोपवासनिरत—यह चौथी प्रतिमा है। इसका कालमान चार मास का है।
५. दिन में ब्रह्मचारी—यह पांचवीं प्रतिमा है। इसका कालमान पांच मास का है।
६. दिन और रात में ब्रह्मचारी—यह छठी प्रतिमा है। इसका कालमान छह मास का है।
७. सचित्त-परित्याग—यह सातवीं प्रतिमा है। इसका कालमान सात

मास का है।

८. आरम्भ परित्यागी—यह आठवीं प्रतिमा है। इसका कालमान आठ मास का है।

९. प्रेष्य-परित्यागी—यह नौवीं प्रतिमा है। इसका कालमान नौ मास का है।

१०. उद्दिष्ट भक्त-परित्यागी—यह दसवीं प्रतिमा है। इसका कालमान दस मास का है।

११. श्रमणभूत—यह ग्यारहवीं प्रतिमा है। इसका कालमान ग्यारह मास का है।[1]

६. भिक्षु की बारह प्रतिमाएं (समवाओ, १२।१)

१. एकमासिकी	७ सप्तमासिकी
२. द्विमासिकी	८. सात दिनरात की
३. त्रिमासिकी	९. सात दिनरात की
४. चतु:मासिकी	१०. सात दिन रात की
५. पञ्चमासिकी	११. अहोरात्रिकी
६. षण्मासिकी	१२. एकरात्रिकी

दृढ़ संहननवाला और धृतियुक्त महासत्त्व, व्युत्सृष्ट, त्यक्त-देह, उपसर्ग-सह मुनि, जो पूर्वधर है, वह इन प्रतिमाओं को स्वीकार करता है। इन प्रतिमाओं में भिन्न-भिन्न तपस्याओं, आसनों तथा स्थानों का निर्देश है। भक्तपान का भी एक निश्चित क्रम है।[2]

७. तेरह क्रियास्थान (सूयगडो, २।२।३-१६)

क्रिया का सामान्य अर्थ है प्रवृत्ति। प्रस्तुत प्रसंग में उन प्रवृत्तियों का संकलन है जो कर्मबंध की हेतुभूत हैं। क्रियाओं के तीन प्रकार के वर्गीकरण प्राप्त हैं। पहला वर्गीकरण है—सूत्रकृतांग सूत्र का। उसके अनुसार तेरह क्रियाओं का उल्लेख इस प्रकार है—

१. अर्थदण्ड—अपने लिए या दूसरे के लिए हिंसा की प्रवृत्ति करना

२. अनर्थदण्ड—निष्प्रयोजन हिंसा की प्रवृत्ति करना

३. हिंसादण्ड—प्रतिशोध की भावना से हिंसा की प्रवृत्ति करना

४. अकस्मात्दण्ड—किसी को मारने के प्रयत्न में किसी दूसरे को मार डालना

५. दृष्टिदोषदण्ड—दृष्टि की विपरीतता से होने वाली हिंसक प्रवृत्ति—जैसे अचोर को चोर, मित्र को अमित्र मानकर मार डालना

---

१. देखें—समवाओ ११/१, टिप्पण पृ० ५४-५६।

२. देखें—आवश्यक, हारिभद्रीया वृत्ति भाग २, पृष्ठ १५०,१५१।

६. मृषाप्रत्ययिक—झूठ बोलने की प्रवृत्ति करना
७. अदत्तादानप्रत्ययिक—चोरी की प्रवृत्ति करना
८. अध्यात्म (मनः) प्रत्ययिक—अन्तर्मन से सावद्य प्रवृत्ति करना
९. मानप्रत्ययिक—अहंकार के वशीभूत होकर प्रवृत्ति करना
१०. मित्रद्वेषप्रत्ययिक—अपने ज्ञातिजनों के अल्प अपराध पर भारी दंड देना
११. मायाप्रत्ययिक—मायायुक्त प्रवृत्ति करना
१२. लोभप्रत्ययिक—लोभ के वशीभूत होकर सावद्य प्रवृत्ति करना
१३. ऐर्यापथिक—समिति और गुप्ति की साधना में संलग्न अनगार वीतराग की प्रवृत्ति

इनमें प्रथम बारह अग्राह्य और तेरहवां क्रियास्थान उपादेय है।

८. चौदह भूतग्राम—जीव-समूह (समवाओ, १४।१)

१. सूक्ष्म अपर्याप्तक
२. सूक्ष्म पर्याप्तक
३. बादर अपर्याप्तक
४. बादर पर्याप्तक
५. द्वीन्द्रिय अपर्याप्तक
६. द्वीन्द्रिय पर्याप्तक
७. त्रीन्द्रिय अपर्याप्तक
८. त्रीन्द्रिय पर्याप्तक
९. चतुरिन्द्रिय अपर्याप्तक
१०. चतुरिन्द्रिय पर्याप्तक
११. असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक
१२. असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक
१३. संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक
१४. संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तक

९. परमाधार्मिक देवों के पन्द्रह प्रकार (समवाओ, १५।१)

१. अंब
२. अंबरिसी
३. श्याम
४. शबल
५. रौद्र
६. उपरौद्र
७. काल
८. महाकाल
९. असिपत्र
१०. धनु
११. कुंभ
१२. बालुका
१३. वैतरणी
१४. खरस्वर
१५. महाघोष

१०. सूत्रकृतांग सूत्र के दो श्रुतस्कंध हैं। पहले श्रुतस्कंध में सोलह अध्ययन हैं। सोलहवें अध्ययन का मूल नाम है 'गाथा'। वह सोलहवां होने के कारण 'गाथा-षोडषक' कहलाता है। यह नाम प्रथम श्रुतस्कंध का वाचक है।

११. सतरह प्रकार का असंयम (समवाओ, १७।१)

१. पृथ्वीकाय असंयम
२. अप्काय असंयम
३. तेजस्काय असंयम
४. वायुकाय असंयम
५. वनस्पतिकाय असंयम
६. द्वीन्द्रिय असंयम

७. त्रीन्द्रिय असंयम
८. चतुरिन्द्रिय असंयम
९. पञ्चेन्द्रिय असंयम
१०. अजीवकाय असंयम
११. प्रेक्षा असंयम
१२. उपेक्षा असंयम
१४. अपहृत्य असंयम
१४. अप्रमार्जन असंयम
१५. मन असंयम
१६. वचन असंयम
१७. काया असंयम

पृथ्वीकाय आदि पांच स्थावर जीवों तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों का मन, वचन, काया से संघट्टन आदि करना, उन्हें पीड़ा पहुंचाना—यह इन जीवों के प्रति किया जाने वाला असंयम है।

अजीव वस्तुएं जो निरन्तर काम में ली जाती हैं, उनके व्यवहरण में जो प्रमाद होता है, वह अजीवकाय असंयम है।

स्थान आदि का प्रतिलेखन न करना—प्रेक्षा असंयम है।

साधर्मिक व्यक्तियों को संयम के प्रति प्रेरित न करना—उपेक्षा असंयम है।

परिष्ठापन योग्य भोजन, वस्तु आदि का परिष्ठापन न करना—अपहृत्य असंयम है।

अकुशल मन का प्रवर्तन करना मन असंयम है।

अकुशल वचन का प्रवर्तन करना वचन असंयम है।

काया की असम्यक् प्रवृत्ति करना काय असंयम है।

११. अठारह प्रकार का अब्रह्मचर्य

अब्रह्मचर्य दो प्रकार का होता है—औदारिक और दिव्य। औदारिक के अन्तर्गत तिर्यञ्चों और मनुष्यों का समावेश होता है और दिव्य देवता से सम्बधित है।

देव, मनुष्य और तिर्यञ्च के साथ तीन कारण—(मन, वचन और काया) से तथा तीन योग—(करना, कराना और अनुमोदन करना)—से अब्रह्मचर्य का सेवन करना। तीनों—देव, मनुष्य और तिर्यञ्च के साथ छह-छह विकल्प होने से उनका कुल योग अठारह हो जाता है—६×३=१८

१३. ज्ञाता के उन्नीस अध्ययन (समवाओ, १९/१)

ज्ञाता धर्मकथा छट्ठा अंग है। इसके दो श्रुतस्कंध हैं। प्रथम श्रुतस्कंध में उन्नीस अध्ययन हैं।

इन अध्ययनों के प्रति कोई प्रकार का अतिचार करना श्रुत का दोष है।

१४. असमाधि के बीस स्थान (समवाओ, (२०/१)

समाधि का अर्थ है—चित्त की नीरोगता, चित्त की निर्मलता।

इसका ताप्पर्य है—मोक्षमार्ग में अवस्थिति, चैतन्य के प्रति जागरूकता। इस समाधि का न होना असमाधि है। उसके बीस स्थान हैं, भेद हैं अथवा उत्पत्ति के कारण हैं—

१. शीघ्र गति से चलना
२. प्रमार्जन किये बिना चलना
३. अविधि से प्रमार्जन कर चलना
४. प्रमाण से अधिक शय्या, आसन आदि रखना
५. रत्नाधिक मुनियों का पराभव करना
६. स्थविरों का उपघात करना
७. प्राणियों का उपघात करना
८. प्रतिक्षण क्रोध करना
९. अत्यन्त क्रुद्ध होना
१०. परोक्ष में अवर्णवाद बोलना
११. बार-बार निश्चयकारिणी भाषा बोलना
१२. अनुत्पन्न नये कलहों को उत्पन्न करना
१३. क्षामित और उपशान्त पुराने कलहों की उदीरणा करना
१४. सचित्त रजों से लिप्त हाथ से भिक्षा आदि लेना, सचित्त रजों से लिप्त पैरों से चंक्रमण करना
१५. अकाल में स्वाध्याय करना
१६. कलह करना
१७. बकवास करना
१८. गण में भेद डालना, गण के मन को दुःखाने वाली भाषा बोलना
१९. सूर्योदय से सूर्यास्त तक बार-बार खाना
२०. एषणा समिति का पालन न करना।

१५, शबल के इकबीस प्रकार (समवाओ, २१।१)

जिस आचरण के द्वारा चारित्र धब्बों वाला होता है, उस आचरण या आचरण-कर्त्ता को 'शबल' कहा जाता है।

१. हस्तकर्म करना
२. मैथुन का प्रतिसेवन करना
३. रात्रि-भोजन करना
४. आधाकर्म आहार करना
५. सागारिक—शय्यातर का पिंड खाना
६. औद्देशिक, क्रीत तथा आहृत आहार खाना
७. बार-बार अशन आदि का प्रत्याख्यान कर उसे खाना

८. छह महीनों में एक गण से दूसरे गण में संक्रमण करना
९. एक महीने में तीन उदकलेप (नाभि-प्रमाण पानी वाली नदी आदि) लगाना
१०. एक महीने में तीन मायास्थान (प्रच्छादन आदि) का सेवन करना
११. राजपिंड का भोग करना
१२. अभिमुखतापूर्वक—जानकर हिंसा करना
१३. अभिमुखतापूर्वक झूठ बोलना
१४. अभिमुखतापूर्वक अदत्तादान लेना
१५. अव्यवहित (बिना कुछ बिछाए) पृथ्वी पर स्थान (कायोत्सर्ग) या निषद्या करना
१६. जानबूझकर जल-स्निग्ध तथा सचित्त रज से संश्लिष्ट पृथ्वी पर स्थान या निषद्या करना
१७. सचित्त पृथ्वी, शिलापट्ट आदि पर स्थान या निषद्या करना
१८. जानबूझकर सचित्त कंद-मूल आदि का भोजन करना
१९. एक वर्ष में दस उदक-लेप लगाना
२०. एक वर्ष में दस मायास्थान का सेवन करना
२१. बार-बार सचित्त जल से लिप्त गृहस्थ के हाथों से अशन, पान आदि ग्रहण कर उनका भोग करना।

१३. बाबीस परीषह (समवाओ, २२।१)

परीषह का सामान्य अर्थ है कष्ट। मुनि-जीवन में जिन कष्टों की अत्यधिक संभावना रहती है, उनका यहां उल्लेख है। ये बावीस प्रकार के हैं। उनको सहने के दो कारक हैं—मोक्षमार्ग से अविचलित होने के लिए तथा कर्मसंचय की निर्जरा के लिए। उन परीषहों का विशद वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र के दूसरे अध्ययन में विस्तार से हुआ है। वे बाबीस परीषह ये हैं—

१. क्षुधा परीषह
२. पिपासा परीषह
३. शीत परीषह
४. उष्ण परीषह
५. दंश-मशक परीषह
६. अचेल परीषह
७. अरति परीषह
८. स्त्री परीषह
९. चर्या परीषह
१०. निषीधिका परीषह
११. शय्या परीषह
१२. आक्रोश परीषह
१३. वध परीषह
१४. याचना परीषह
१५. अलाभ परीषह
१६. रोग परीषह
१७. तृणस्पर्श परीषह
१८. जल्ल परीषह
१९. सत्कार-पुरस्कार परीषह
२०. ज्ञान परीषह
२१. दर्शन परीषह
२२. प्रज्ञा परीषह

१७. सूत्रकृताङ्ग के तेबीस अध्ययन

सूत्रकृताङ्ग के दो श्रुतस्कन्ध हैं। पहले श्रुतस्कन्ध में सोलह और दूसरे श्रुतस्कन्ध में सात अध्ययन हैं। इस प्रकार पूरे सूत्रकृतांग के (१६+७) तेबीस अध्ययन होते हैं।

१८. देव के चौबीस प्रकार (समवाओ, २४।१,३)

इसके दो वर्गीकरण प्राप्त हैं। एक के अनुसार चौबीस देवाधिदेव (तीर्थंकर) गृहीत हैं। दूसरे के अनुसार चौबीस देव—इन्द्र ये हैं।

१. भवनपति देवों के दस प्रकार
२. व्यन्तर देवों के आठ प्रकार
३. ज्योतिषी देवों के पांच प्रकार
४. वैमानिक देवों का एक प्रकार
कुल योग (१०+८+५+१)=२४

१९. पचीस भावनाएं (समवाओ, २५।१)

महाव्रतों की सुरक्षा और पुष्टि के लिए जिसका प्रतिदिन चिन्तन और क्रियान्वयन किया जाता है, वह भावना है। पांच महाव्रतों की पचीस भावनाएं हैं—

अहिंसा महाव्रत की पांच भावनाएं—

१. ईर्या समिति २. मनोगुप्ति ३. वचनगुप्ति ४. आलोक-भाजन भोजन ५. आदानभांडामत्रनिक्षेपणा समिति।

सत्य महाव्रत की पांच भावनाएं—

१. विधियुक्त बोलना २. क्रोधविवेक ३. लोभविवेक ४. भयविवेक ५. हास्यविवेक।

अचौर्य महाव्रत की पांच भावनाएं—

१. अवग्रह की अनुज्ञा लेना
२. अवग्रह का सीमा-बोध करना
३. अनुज्ञात अवग्रह की सीमा में रहना
४. साधर्मिकों द्वारा याचित अवग्रह में उनकी आज्ञा लेकर रहना
५. भक्त-पान का आचार्य आदि को दिखाकर उपभोग करना।

ब्रह्मचर्य महाव्रत की पांच भावनाएं—

१. स्त्री, पशु और नपुंसक से संयुक्त शयन और आसन का वर्जन करना
२. स्त्रीकथा का वर्जन करना

३. स्त्रियों के अवयवों का अवलोकन न करना

४. पूर्व भुक्त भोगों की स्मृति न करना

५. प्रणीत—गरिष्ठ आहार न करना।

अपरिग्रह महाव्रत की पांच भावनाएं—

पांचों इन्द्रियों के प्रति होने वाले राग—आसक्ति से उपरत रहना।

२०. इनमें तीन आगम ग्रंथों के उद्देशन-काल (अध्ययन) का संकेत है—

१. दशाश्रुतस्कंध—१० अध्ययन

२. बृहत्कल्प—६ अध्ययन

३. व्यवहारसूत्र—१० अध्ययन

(समवाओ, २६।१)

उद्देशन काल का अर्थ है—जिसकी वाचना एक दिन में एक साथ दी जा सके। इसके आधार पर प्रत्येक अध्ययन का एक-एक उद्देशन-काल होता है।

२१. अनगार के सताबीस गुण (समवाओ, २७।१)

१. प्राणातिपात-विरमण
२. मृषावाद-विरमण
३. अदत्तादान-विरमण
४. मैथुन-विरमण
५. परिग्रह-विरमण
६. श्रोत्रेन्द्रिय-निग्रह
७. चक्षुरिन्द्रिय-निग्रह
८. घ्राणेन्द्रिय-निग्रह
९. रसनेन्द्रिय-निग्रह
१०. स्पर्शनेन्द्रिय-निग्रह
११. क्रोध-विवेक
१२. मान-विवेक
१३. माया-विवेक
१४. लोभ विवेक
१५. भावसत्य—अन्तरात्मा की पवित्रता
१६. करणसत्य—क्रिया की पवित्रता
१७. योगसत्य—मन-वचन-काया का सम्यक् प्रवर्तन
१८. क्षमा
१९. वैराग्य
२०. मन-समाहरण—मन का संकोचन
२१. वचन-समाहरण—वचन का संकोचन
२२. काय-समाहरण—काया का संकोचन
२३. ज्ञान-संपन्नता
२४. दर्शन-संपन्नता
२५. चारित्र-संपन्नता
२६. वेदना-अधिसहन
२७. मारणान्तिक अधिसहन।

आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति (पृष्ठ ११३) में इनका उल्लेख भिन्न प्रकार से है। वहां रात्रिभोजन-विरमण-सहित व्रत-षट्क, पांच इन्द्रिय-निग्रह, षटकाय, (१८) भावसत्य, (१९) करणसत्य, (२०) क्षमा, (२१) विरागता, (२२-२४) मनोवाक्कायनिग्रह, (२५) संयमयोगयुक्तता, (२६) वेदनाअभिसहन, (२७) मारणान्तिक अभिसहन।

२२. आचार-प्रकल्प

इसके दो अर्थ हैं—१. आचारांग का एक अध्ययन जो निशीथ कहलाता है तथा २. साध्वाचार का व्यवस्थापन।

इसका अर्थ इस प्रकार भी किया जाता है—

१. आचार—आचारांग सूत्र के दोनों क्षुतस्कंधों के (१६+९) पचीस अध्ययन।

२. प्रकल्प—निशीथ के तीन अध्ययन।

हरिभद्र ने आचारांग को ही आचार-प्रकल्प मानकर उपरोक्त (२५+३) अध्ययनों को गिनाया है। (वृत्ति, पृष्ठ ११३)

२३. पापश्रुतप्रसंग (समवाओ, २९।१)

जो शास्त्र पाप या बन्धन का उपादान होता है उसे 'पापश्रुत' कहा जाता है। प्रसंग के दो अर्थ हैं—आसक्ति और आसेवन। पापश्रुतप्रसंग के उनतीस प्रकार ये हैं—

१. भौम २. उत्पात ३. स्वप्न ४. अन्तरिक्ष ५ अंग ६. स्वर ७. व्यञ्जन ८. लक्षण—इन आठों के सूत्र, वृत्ति और वार्त्तिक—ये तीन-तीन प्रकार होते हैं। २५. विकथानुयोग २६. विद्यानुयोग २७. मंत्रानुयोग २८. योगानुयोग २९. अन्यतीर्थिक-प्रवृत्तानुयोग।

२४. मोहनीय के स्थान

इसका तात्पर्य है—महामोहनीय कर्मबंध के तीस कारण हैं। प्रश्न-व्याकरण (वृत्ति पत्र ८६, ८७), उत्तराध्ययन (वृत्ति पत्र ६१७, ६१८) तथा दशाश्रुतस्कंध (दशा नौ) में इन तीस स्थानों का उल्लेख प्राप्त होता है। उनमें कुछ भिन्नता भी है। प्रश्नव्याकरण की वृत्ति के अनुसार वे तीस स्थान ये हैं :

१. त्रस जीवों को पानी में डूबो कर मारना।
२. हाथ आदि से मुख आदि अंगों को बंद कर प्राणी को मारना।
३. सिर पर चर्म आदि बांधकर मारना।
४. मुद्गर आदि से सिर पर प्रहार कर मारना।
५. प्राणियों के लिए जो आधारभूत व्यक्ति हैं, उन्हें मारना।
६. सामर्थ्य होते हुए भी कलुषित भावना से ग्लान की औषधि आदि से सेवा न करना।
७. तपस्वियों को बलात् धर्म से भ्रष्ट करना।
८. दूसरों को मोक्षमार्ग से विमुख कर अपकार करना।
९. जिनदेव की निन्दा करना।
१०. आचार्य आदि की निन्दा करना।

११. ज्ञान आदि से उपकृत करने वाले आचार्य आदि की सेवा-शुश्रुषा नहीं करना।
१२. बार-बार अधिकरण—कलह करना।
१३. वशीकरण करना।
१४. प्रत्याख्यात भोगों की पुनः अभिलाषा करना।
१५. अबहुश्रुती होते हुए भी बार-बार अपने को बहुश्रुती बताना।
१६. अतपस्वी होते हुए भी तपस्वी बताना।
१७. प्राणियों को घेर, वहां अग्नि जला, धुएं की घुटन से उन्हें मारना।
१८. अपने अकृत्य को दूसरे के सिर मढना।
१९. विविध प्रकार की माया से दूसरों को ठगना।
२०. अशुभ आशय से सत्य को मृषा बताना।
२१. सदा कलह करते रहना।
२२. विश्वास उत्पन्न कर दूसरे के धन का अपहरण करना।
२३. विश्वास उत्पन्न कर दूसरों की स्त्रियों को लुभाना।
२४. अकुमार होते हुए भी अपने को कुमार कहना।
२५. अब्रह्मचारी होते हुए भी अपने आपको ब्रह्मचारी कहना।
२६. जिसके द्वारा ऐश्वर्य प्राप्त किया, परोक्ष में उसी के धन की वांछा करना।
२७. जिसके प्रभाव से कीर्ति प्राप्त की उसी को ज्यों-त्यों अन्तराय देना।
२८. राजा, सेनापति, राष्ट्रचिन्तक आदि जन-नेताओं को मारना।
२९. देव-दर्शन न होते हुए भी 'मुझे देव-दर्शन होता है'—ऐसा कहना।
३०. देवों की अवज्ञा करते हुए अपने आपको देव घोषित करना।

२५. सिद्धों के आदि गुण (समवाओ, ३१।१)

आदि-गुण का अर्थ है—मुक्त होने के प्रथम क्षण में होने वाले गुण। उनकी संख्या इकतीस है। संख्या दो प्रकार से बतलाई गई है—

आठों कर्मों के क्षय की निष्पत्ति के आधार पर—

१. ज्ञानावरणीय	कर्म की	पांचों	प्रकृतियों	की	क्षीणता से	निष्पन्न गुण ५
२. दर्शनावरणीय	,,	,, नौ	,,	,,	,,	९
३. आयुष्य	,,	,, चार	,,	,,	,,	४
४. अन्तराय	,,	,, पांच	,,	,,	,,	५
५. वेदनीय	,,	,, दो	,,	,,	,,	२
६. मोहनीय	,,	,, दो	,,	,,	,,	२
७. नाम	,,	,, दो	,,	,,	,,	२
८. गोत्र	,,	,, दो	,,	,,	,,	२

दूसरे प्रकार के संख्या-आकलन में संस्थान, वर्ण, गंध, रस, स्पर्श और वेद—ये छह घटक तत्त्व हैं—

१. संस्थान—आयत, वृत्त, त्र्यंस, चतुरस्र, परिमंडल ।
२. वर्ण कृष्ण, नील, रक्त, पीत, शुक्ल ।
३. गंध —सुरभिगंध, दुरभिगंध ।
४. रस —तिक्त, कटुक, कषाय, अम्ल, मधुर ।
५. स्पर्श—कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष ।
६. वेद —स्त्री, पुरुष, नपुंसक ।

इन सब गुणों के साथ 'नकार' लगाना चाहिए। जैसे वे न दीर्घ हैं, न ह्रस्व हैं आदि-आदि ।

इनके अतिरिक्त तीन गुण और हैं—अशरीरी, अजन्मा, अनासक्त। इनका कुलयोग इकतीस होता है ।

२६. **योगसंग्रह** (समवाओ, ३२।१)

जैन परंपरा में योग शब्द मन, वचन, काया की प्रवृति के लिए प्रयुक्त होता है । प्रस्तुत प्रसंग में योग शब्द समाधि का वाचक है। यहां जिन बत्तीस योगों का संग्रहण किया है, वे सब समाधि के कारणभूत हैं ।

१. आलोचना—अपने प्रमाद का निवेदन करना ।
२. निरपलाप—आलोचित प्रमाद का अप्रकटीकरण ।
३. आपत्काल में दृढ़धर्मता—किसी भी प्रकार की आपत्ति में दृढ़धर्मी बने रहना ।
४. अनिश्रितोपधान—दूसरों की सहायता लिए बिना तपःकर्म करना ।
५. शिक्षा—सूत्रार्थ का पठन-पाठन तथा क्रिया का आचरण ।
६. निष्प्रतिकर्मता—शरीर की सार-संभाल या चिकित्सा का वर्जन ।
७. अज्ञातता—अज्ञात रूप में तप करना, उसका प्रदर्शन या प्रख्यापन नहीं करना ।
८. अलोभ—निर्लोभता का अभ्यास करना ।
९. तितिक्षा—कष्ट-सहिष्णुता, परीषहों पर विजय पाने का अभ्यास करना ।
१०. आर्जव—सरलता ।
११. शुचि—पवित्रता—सत्य, संयम आदि का आचरण ।
१२. सम्यग्दृष्टि—सम्यग्दर्शन की शुद्धि ।
१३. समाधि—चित्त-स्वास्थ्य ।
१४. आचार—आचार का सम्यग् प्रकार से पालन करना, उसमें माया न करना ।

१५. विनयोपग—विनम्र होना, अभिमान न करना।
१६. धृतिमति—धैर्ययुक्त बुद्धि, अदीनता।
१७. संवेग—संसार-वैराग्य अथवा मोक्ष की अभिलाषा।
१८. प्रणिधि—अध्यवसाय की एकाग्रता।
१९. सुविधि—सद् अनुष्ठान।
२०. संवर—आस्रवों का निरोध।
२१. आत्मदोषोपसंहार—अपने दोषों का उपसंहरण।
२२. सर्वकामविरक्तता—सर्व विषयों से विमुखता।
२३. प्रत्याख्यान—मूलगुण विषयक त्याग।
२४. प्रत्याख्यान—उत्तरगुण विषयक त्याग।
२५. व्युत्सर्ग—शरीर, भक्तपान, उपधि तथा कषाय का विसर्जन।
२६. अप्रमाद—प्रमाद का वर्जन।
२७. लवालव—सामाचारी के पालन में सतत जागरूक रहना।
२८. ध्यानसंवरयोग—महाप्राण ध्यान की साधना करना।
२९. मारणांतिक उदय—मारणांतिक वेदना का उदय होने पर भी क्षुब्ध न होना, शांत और प्रसन्न रहना।
३०. संग-परिज्ञा—आसक्ति का त्याग।
३१. प्रायश्चित्तकरण—दोष-विशुद्धि का अनुष्ठान करना।
३२. मारणांतिक आराधना—मृत्युकाल में आराधना करना।

२७. आशातना

ऐसी प्रवृत्ति जिससे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, विनय आदि में न्यूनता आए, उसकी उपलब्धि में बाधा आए, वह आशातना कहलाती है। आशातना के तेतीस प्रकार हैं। उसका आकलन भी दो प्रकार से प्राप्त होता है—

१. 'अरिहंतों की आशातना' से लेकर 'स्वाध्याय काल में स्वाध्याय न किया हो' तक तेतीस की संख्या होती है। ये तेतीस आशातनाएं हैं।

२. समवाओ (३३।१) में उनका आकलन भिन्न प्रकार से है। यह प्रकार अधिक प्रचलित है।

५ काउस्सग्गो

१. अइयार-विसोहण-सुत्तं

दैवसिक-अइयार-विसोहणट्ठं करेमि काउस्सग्गं ।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
दैवसिकातिचारविशोधनार्थं	दैवसिक अतिचार की विशुद्धि के लिए
करोमि	करता हूं
कायोत्सर्गम् ।	कायोत्सर्ग ।

भावार्थ

दैवसिक अतिचार की विशुद्धि के लिए कायोत्सर्ग करता हूं ।

२. नमुक्कार-सुत्तं[1]

३. सामाइय-सुत्तं[2]

५. अइयार-चिंतण-सुत्तं[3]

५. काउस्सग्गपइण्णा-सुत्तं

तस्स उत्तरीकरणेणं पायच्छित्तकरणेणं विसोहीकरणेणं विसल्लीकरणेणं पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं अन्नत्थ ऊससिएणं नीससिएणं खासिएणं छीएणं जंभाइएणं उड्डुएणं वायनिसग्गेणं भमलीए पित्तमुच्छाए सूहुमेहिं अंगसंचालेहिं सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं एवमाइएहिं आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ होज्ज मे काउस्सग्गो जाव अरहंताणं भगवंताणं नमोक्कारेणं न पारेमि ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि ।

१,२. देखें—पहला प्रकरण ।

३. यहां चतुर्थ प्रकरण का पडिक्कमण सुत्तं आएगा । इस पाठ में 'पडिक्कमिउं' के स्थान में 'ठाइउं काउस्सग्गं' पाठ होगा ।

ठाइउं=स्थापना करने की

काउस्सग्गं=कायोत्सर्ग

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
तस्य	उसके
उत्तरीकरणेन	परिष्कार द्वारा
प्रायश्चित्तकरणेन	प्रायश्चित्त द्वारा
विशोधिकरणेन	विशोधि द्वारा
विशल्यीकरणेन	शल्य-विमोचन द्वारा
पापानां कर्मणां	पापाकर्मों के
निर्घातनार्थं	विनाश के लिए
तिष्ठामि	स्थित होता हूं
ककायोत्सर्गम्	कायोत्सर्ग में
अन्यत्र	(निम्न निर्दिष्ट को) छोड़कर
उच्छ्वसितात्	उच्छ्वास
निःश्वसितात्	निःश्वास
कासितात्	खांसी
क्षुतात्	छींक
जृम्भितात्	जम्हाई
'उड्डुएणं'	डकार
वातनिसर्गात्	अधोवायु
भ्रमल्याः	चक्कर
पित्तमूर्च्छायाः	पित्तजनित मूर्च्छा
सूक्ष्मेभ्यः अंगसञ्चालेभ्यः	शरीर के अंगों के सूक्ष्म संचार
सूक्ष्मेभ्यः श्वेलसञ्चालेभ्यः	श्लेष्म के सूक्ष्म संचार (और)
सूक्ष्मेभ्यः दृष्टिसञ्चालेभ्यः	दृष्टि के सूक्ष्म संचार को—
एमादिभिः	इस प्रकार के अन्य
आकारैः	अपवादों से
अभग्नः	अभग्न
अविराधितो	अविराधित
भवेद्	हो
मम	मेरा
कायोत्सर्गः	कायोत्सर्ग
यावद्	जब तक
अर्हतां	अर्हत्
भगवतां	भगवान् को
नमस्कारेण	नमस्कार करके
न	नहीं

पारयामि	पूरा कर लेता (कायोत्सर्ग)
तावत्	तब तक
कायं	काया को
स्थानेन	स्थान—स्थिर मुद्रा
मौनेन	मौन (और)
ध्यानेन	(शुभ) ध्यान के द्वारा
आत्मानं[1]	अपनी आत्मा (शरीर) का
व्युत्सृजामि	त्याग करता हूं।

भावार्थ

मैं अविधिकृत आचारण के परिष्कार, प्रायश्चित्त, विशोधन और शल्य-विमोचन द्वारा पाप कर्मों को नष्ट करने के लिए कायोत्सर्ग करता हूं।

उच्छ्वास, निःश्वास, खांसी, छींक, जम्हाई, डकार, अधोवायु, चक्कर, पित्तजनितमूर्च्छा, शारीरिक अवयवों, कफ और दृष्टि का सूक्ष्म संचालन—ये प्रवृत्तियां कायोत्सर्ग में बाधक नहीं बनेंगी। इस प्रकार की अन्य स्वाभाविक और विकारजनित बाधाओं के द्वारा भग्न और विराधित नहीं होगा मेरा कायोत्सर्ग। जब तक मैं अर्हत् भगवान् को नमस्कार कर उसे सम्पन्न न करूं तब तक मैं स्थिर मुद्रा, मौन और शुभ ध्यान के द्वारा अपने शरीर का विसर्जन करता हूं।

६. चउवीसत्थव-सुत्तं[2]

---

१. हारिभद्रीया वृत्ति—प्राकृतशैल्या आत्मीयं।

२. देखें—दूसरा प्रकरण।

१.

अईअं पडिक्कमामि पडिपुन्नं संवरेमि अणागयं पच्चक्खामि ।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
अतीतं	मैं अतीत का
प्रतिक्रामामि	प्रतिक्रमण करता हूं,
प्रत्युत्पन्नं	वर्तमान का
संवृणोमि	संवर करता हूं,
अनागतं	भविष्य का
प्रत्याख्यामि ।	प्रत्याख्यान करता हूं ।

२. पच्चक्खाण-सुत्तं

(क) नमुक्कारसहियं

सूरे उग्गए नमुक्कारसहियं पच्चक्खामि चउव्विहं पि आहारं—असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं वोसिरामि ।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
सूरे	सूर्य के
उद्गते	उग जाने पर
नमस्कारसहितां	नमस्कारसंहिता[1] का
प्रत्याख्यामि	प्रत्याख्यान करता हूं
चतुर्विधमपि	चतुर्विध
आहारं	आहार का
अशनं	अशन
पानं	पान
खाद्यं	खाद्य (और)
स्वाद्यं	स्वाद्य का

१. सूर्योदय से अडतालिस मिनिट का कालमान । राजस्थानी भाषा में 'नोकारसी' ।

अन्यत्र	छोड़कर
अनाभोगात्	अज्ञान और
सहसाकारात्	आकस्मिकता को
व्युत्सृजामि ।	व्युत्सर्ग करता हूं ।

(ख) पोरिसी

सूरे उग्गए पोरिसिं पच्चक्खामि चउव्विहं आहारं—असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं पच्छन्नकालेणं दिसामोहेणं साहुवयणेणं सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं वोसिरामि ।

संस्कृत छाया	**शब्दार्थ**
सूरे	सूर्य के
उद्गते	उग जाने पर
पौरुषी	'पौरुषी'[1] का
प्रत्याख्यामि	प्रत्याख्यान करता हूं
चतुर्विधमपि	चतुर्विध
आहारं	आहार का
अशनं	अशन
पानं	पान
खाद्यं	खाद्य (और)
स्वाद्यं	स्वाद्य का
अन्यत्र	छोड़कर
अनाभोगात्	अज्ञान और
सहसाकारात्	आकस्मिकता को
प्रच्छन्नकालात्	काल का पता न चलने पर
दिङ्मोहात्	दिशामूढ़ता हो जाने पर
साधुवचनात्	साधु के कहने पर
सर्वसमाधिप्रत्ययाकारात्	सर्वसमाधिहेतुक
व्युत्सृजामि ।	व्युत्सर्ग करता हूं ।

(ग) अभत्तट्ठं

सूरे उग्गए अभत्तट्ठं पच्चक्खामि चउव्विहंपि आहारं—असणं पाणं खाइमं साइमं अन्नत्थणाभोगेणं सहसागारेणं पारिट्ठावणियागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं वोसिरामि ।

---

१. एक प्रहर का कालमान ।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
सूरे	सूर्य के
उद्गते	उग जाने पर
अभक्तार्थं	उपवास का
प्रत्याख्यामि	प्रत्याख्यान करता हूं
चतुर्विधमपि	चतुर्विध
आहारं	आहार का
अशनं	अशन
पानं	पान
खाद्यं	खाद्य (और)
स्वाद्यं	स्वाद्य का
अन्यत्र	छोड़कर
अनाभोगात्	अज्ञान और
सहसाकारात्	आकस्मिकता को
परिष्ठापनिकाकारात्	अतिरिक्त आहार आ जाने पर परिष्ठापन की स्थिति में
महत्तराकारात्	आचार्य के द्वारा आज्ञा देने पर
सर्वसमाधिप्रत्ययाकारात्	सर्वसमाधिहेतुक
व्युत्सृजामि ।	व्युत्सर्ग करता हूं ।

३. सक्कत्थुई

नमोत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं आइगराणं तित्थयराणं सहसंबुद्धाणं पुरिसोत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरीयाणं पुरिसवरगंधहत्थीणं लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोयगराणं, अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं दीवो ताणं सरण-गई-पइट्ठा अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं विअट्टछउमाणं जिणाणं जावयाणं तिण्णाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोयगाणं सव्वण्णूणं सव्वदरिसीणं सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तयं सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं नमो जिणाणं जियभयाणं ।

संस्कृत छाया	शब्दार्थ
नमोऽस्तु	नमस्कार हो
अर्हद्भ्यः	अर्हत्

भगवद्भ्यः	भगवान्
आदिकरेभ्यः	धर्म के आदिकर्ता
तीर्थंकरेभ्यः	तीर्थंकर
स्वयंसम्बुद्धेभ्यः	स्वयंसम्बुद्ध
पुरुषोत्तमेभ्यः	पुरुषोत्तम
पुरुषसिंहेभ्यः	पुरुषसिंह
पुरुषवरपुंडरीकेभ्यः	पुरुषों में प्रवर पुंडरीक
पुरुषवरगंधहस्तिभ्यः	पुरुषों में प्रवर गंधहस्ती
लोकोत्तमेभ्यः	लोकोत्तम
लोकनाथेभ्यः	लोकनाथ
लोकहितेभ्यः	लोकहितकारी
लोकप्रदीपेभ्यः	लोकप्रदीप
लोकप्रद्योतकरेभ्यः	लोक में उद्योत करने वाले
अभयदयेभ्यः	अभयदाता
चक्षुर्दयेभ्यः	चक्षुदाता
मार्गदयेभ्यः	मार्गदाता
शरणदयेभ्यः	शरणदाता
जीवदयेभ्यः	जीवनदाता
बोधिदयेभ्यः	बोधिदाता
धर्मदयेभ्यः	धर्मदाता
धर्मदेशकेभ्यः	धर्मोपदेष्टा
धर्मनायकेभ्यः	धर्मनायक
धर्मसारथिभ्यः	धर्म सारथि
धर्म-वर-चातुरंत-चक्रवर्तिभ्यः	धर्म के प्रवर चतुर्दिक व्यापी चक्रवर्ती
दीपः	जो दीप हैं
त्राणं	त्राण हैं
शरण-गति-प्रतिष्ठा	शरण, गति और प्रतिष्ठा है
अप्रतिहत-वर-ज्ञानदर्शनधरेभ्यः	अबाधित प्रवरज्ञान-दर्शन के धारक
विवृतछद्मभ्यः	आवरण-रहित
जिनेभ्यः	जयी या ज्ञाता
जापकेभ्यः	जिताने वाले या ज्ञापक
तीर्णेभ्यः	तीर्ण
तारकेभ्यः	तारक
बुद्धेभ्यः	बुद्ध
बोधकेभ्यः	बोधिदाता

मुक्तेभ्यः	मुक्त
मोचकेभ्यः	मुक्तिदाता
सर्वज्ञेभ्यः	सर्वज्ञ
सर्वदर्शिभ्यः	सर्वदर्शी
शिवम्	कल्याणकारी
अचलम्	अचल
अरुजम्	अरुज
अनन्तम्	अनन्त
अक्षयम्	अक्षय
अव्याबाधम्	अव्याबाध
अपुनरावृत्तकं	पुनरावृत्ति से रहित
सिद्धिगति-नामधेयं	सिद्धि गति नामक
स्थानं	स्थान को
संप्राप्ततेभ्यः[1]	प्राप्त
नमो	नमस्कार हो
जिनेभ्यः	जिनेश्वर
जितभयेभ्यः ।	भय-विजेता को ।

१. दूसरे नमोत्थुणं में इसके स्थान पर 'संपाविउकामाणं' पाठ है। इसकी संस्कृत छाया है—'संप्राप्तुकामेभ्यः' और अर्थ है—संप्राप्त करने वाले।

परिशिष्ट १

१. ज्ञान के अतिचार

आगमे तिविहे पन्नते, तं जहा—सूत्तागमे अत्थागमे तदुभयागमे—आगम पाठ का विपर्यास, मूल पाठ में अन्य पाठ का मिश्रण, अक्षरों की न्यूनाधिकता, पद, विराम, घोष व सम्बन्ध की हीनता, ज्ञान को विधिवत् न लेना और न देना, अकाल में स्वाध्याय, काल में अस्वाध्याय, अस्वाध्यायी में स्वाध्याय, स्वाध्यायी में अस्वाध्यायी—इस प्रकार ज्ञान की आराधना में अतिक्रमण किया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

२. दर्शन के अतिचार

अरहंतो महदेवो, जावज्जीवं सुसाहुणो गुरूणो जिणपण्णत्तं तत्तं इयं सम्मत्तं मए गहियं । तत्त्व में शंका, अतत्त्व की आकांक्षा, करनी के फल में संदेह, कुतत्त्वगामी की प्रशंसा व उनसे संपर्क—इस प्रकार दर्शन की आराधना में अतिक्रमण किया हो तो तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

३. चारित्रातिचार

१. आहिंसा महाव्रत

१. पृथ्वीकाय—खनिज मिट्टी, धातु, द्रव आदि ।
२. अप्काय—पानी, ओस, हिम, कुहासा आदि ।
३. तेजस्काय—अग्नि, अंगारे आदि ।
४. वायुकाय—सचित्त वायु—फूंक देना, पंखे व वस्त्र से वीजना आदि ।
५. वनस्पतिकाय—बीज, हरियाली, फफूंदी आदि ।
६. त्रसकाय—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, संमूर्च्छिम तथा गर्भज पंचेन्द्रिय ।

इस प्रकार छह जीवनिकाय की विराधना मन से, वचन से, काया से की हो, कराई हो, करते हुए का अनुमोदन किया हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।[1]

भावना

१. मन में हिंसा, घृणा और ईर्ष्या का विकल्प न उठे—इस भावना

---

१. तस्स मिच्छा मि दुक्कडं से पूर्व सर्वत्र त्रिकरण, त्रियोग गम्य हैं।

से मेरा चित्त भावित रहे।

२. आक्रोश, कलह और कटुतापूर्ण वचन का प्रयोग न हो—इस भावना से मेरा चित्त भावित रहे।

३. मैत्री, प्रमोद और करुणा की भावना से मेरा चित्त भावित रहे।

२. सत्य महाव्रत

क्रोध, लोभ, भय और हास्यवश असत्य बोलकर सत्य महाव्रत की विराधना की हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावना

१. बिना विचारे न बोलूं—इस भावना से मेरा चित्त भावित रहे।

२. क्रोध, लोभ, भय और हास्य का विकल्प न उठे—इस भावना से मेरा चित्त भावित रहे।

३. अचौर्य महाव्रत

स्वामी की अनुमति के बिना अल्प-मूल्य या बहु-मूल्य वस्तु ग्रहण कर तथा देव और गुरु की आज्ञा का भंग कर अचौर्य महाव्रत की विराधना की हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावना

१. प्रामाणिकता की भावना से मेरा चित्त भावित रहे।

२. आज्ञा, अनुशासन और मर्यादा की भावना से मेरा चित्त भावित रहे।

३. अपने संविभाग से अधिक न लूं—इस भावना से मेरा चित्त भावित रहे।

४. अपने दायित्व के प्रति जागरूक रहूं—इस भावना से मेरा चित्त भावित रहे।

तवतेणे वयतेणे, रूवतेणे य जे नरे।
आयारभावतेणे य, कुव्वइ देवकिव्विसं॥

४. ब्रह्मचर्य महाव्रत

काम-राग, स्नेह-राग, दृष्टि-रागवश ब्रह्मचर्य महाव्रत की विराधना की हो, तस्य मिच्छा मि दुक्कडं।

भावना

१. खाद्य-संयम, दृष्टि-संयम और स्मृति-संयम की भावना से मेरा चित्त भावित रहे।

२. वासना को उद्दीप्त करने वाली चर्चा और विभूषा से बचता

रहूं—इस भावना से मेरा चित्त भावित रहे।

५. अपरिग्रह महाव्रत

पदार्थ का संग्रह, अप्राप्त वस्तु की आकांक्षा और प्राप्त वस्तु की मूर्च्छा कर अपरिग्रह महाव्रत की विराधना की हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

भावना

१. मनोज्ञ-अमोज्ञ शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श के प्रति प्रियता-अप्रियता का भाव न आए, इस भावना से मेरा चित्त भावित रहे।

२. उपकरण की मर्यादा का अतिक्रमण न हो, इस भावना से मेरा चित्त भावित रहे।

३. अल्पोषधि की भावना से मेरा चित्त भावित रहे।

अणिएयवासो समुयाणचरिया, अन्नायउंछं पइरिक्कया य।
अप्पोवही कलहविवज्जणा य, विहारचरिया इसिणं पसत्था॥

रात्रि-भोजन-विरमण व्रत

अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, औषध आदि रात्रि में रखकर या भोगकर रात्रि-भोजन विरमण व्रत की विराधना की हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

पांच समितियां

१. ईर्या समिति—शरीर प्रमाण भूमि को देख, इन्द्रिय-बिषय और स्वाध्याय का वर्जन कर तथा मौनपूर्वक चलने में प्रमाद किया हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

२. भाषासमिति—निरवद्य, परिमित, संयत और विचारपूर्वक बोलने में प्रमाद किया हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

३. एषणा समिति—गवेषणा, ग्रहणैषणा और परिभोगैषणा में प्रमाद किया हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

४. उत्सर्ग समिति—वस्त्र, पात्र आदि उपकरण संयमपूर्वक लेने-रखने में प्रमाद किया हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

५. उत्सर्ग समिति—उच्चार, प्रस्रवण, श्लेष्म आदि का संयमपूर्वक परिष्ठापन करने में प्रमाद किया हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

तीन गुप्तियां

१. मनोगुप्ति—विषय, कषाय आदि सावद्य प्रवृत्ति से मन के निवर्तन तथा मनोनिग्रह में प्रमाद किया हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

२. वचनगुप्ति—विषय, कषाय आदि सावद्य प्रवृत्ति से वचन के निवर्तन तथा बचन-निग्रह में प्रमाद किया हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

३. कायगुप्ति—उठने-बैठने, चलने-सोने आदि की असंयत प्रवृत्ति से काया के निवर्तन तथा काय-निग्रह में प्रमाद किया हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

४. तप अतिचार—द्वादशविध तप के आचरण में कोई विराधना की हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

५. वीर्यातिचार—प्रतिक्रमण, प्रतिलेखन, चउवीसत्थव आदि आवश्यक क्रिया तथा सेवा-शुश्रूषा आदि में शक्ति का संगोपन किया हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

सामाचारी—बाहर जाते समय **'आवस्सई'**, वापिस लौटने पर **'निस्सही'**, परिष्ठापन आदि से पूर्व **'अणुजाणह जस्स उग्गहं'** और उसके बाद **'वोसिरे वसिरे'** कहना आदि सामाचारी के आचरण में तथा मूलगुण, उत्तरगुण में प्रमाद किया हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

अठारह पाप

प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, परिपरिवाद, रति-अरति, मायामृषा, मिथ्यादर्शनशल्य—इन पाप-स्थानों का आचरण किया हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

परिशिष्ट २

पंचपद-वन्दना

णमो अरहंताणं—परम अर्हता संपन्न, चार घनघाती कर्म का क्षय कर, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चारित्र, अनन्त शक्ति और आठ प्रातिहार्य, इन बारह गुणों से सुशोभित हैं, चउतीस अतिशय, पैंतीस वचनातिशय से युक्त, धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक, वर्तमान तीर्थंकर सीमंधर आदि अर्हतों को विनम्रभाव से पंचांग प्रणतिपूर्वक वन्दना—तिक्खुत्तो आयाहिणं·····।

णमो सिद्धाणं—परम सिद्धि संप्राप्त, अष्ट कर्म क्षय कर केवलज्ञान, केवलदर्शन, असंवेदन, आत्म-मरण, अटल-अवगाहन, अमूर्ति, अगुरुलघु और निरन्तराय इन अष्टगुणों से सम्पन्न, परमात्मा, परमेश्वर, जन्म, मरण, जरा, रोग, शोक, दुःख, दारिद्र्य रहित अनन्त सिद्धों को विनम्रभाव से पंचांग प्रणतिपूर्वक वंदना—तिक्खुत्तो आयाहिणं····।

णमो आयरियाणं—परम आचार-कुशल, धर्मोपदेशक, धर्मधुरंधर, बहुश्रुत, मेधावी, सत्य-निष्ठ, श्रद्धा-धृति-शक्ति-शान्ति-सम्पन्न, अष्टविध गणि-सम्पदा[1] से सुशोभित, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के ज्ञाता, चतुर्विध धर्मसंघ के शास्ता, तीर्थंकर के प्रतिनिधि एवं छत्तीस गुण के धारक[2] वर्तमान आचार्यश्री तुलसी आदि आचार्यों को पंचांग प्रणतिपूर्वक वन्दना—तिक्खुत्तो आयाहिणं····।

णमो उवज्झायाणं—परम श्रुत-स्वाध्यायी, धर्मसंघ में आचार्य द्वारा नियुक्त, ग्यारह अंग, बारह उपांग और अध्ययन-अध्यापन में कुशल—इन

---

१. १. आचार-संपदा, २. श्रुत-संपदा, ३. शरीर-संपदा, ४. वचन-संपदा, ५. वाचना-संपदा, ६. मति-संपदा, ७. प्रयोग-संपदा, ८. संग्रह संपदा।

२. पांच महाव्रत, पांच आचार, पांच समिति, तीन गुप्ति, नव-बाड़-सहित ब्रह्मचर्य का पालन, चार कषाय-वर्जन, पंचेन्द्रिय-विजय।

अथवा

१. देस[1] कुल[2] जाइ[3] रूवी[4] संघयणा[5] धिइ[6] जुओ अनासंसी,[7]
अविकत्थणो[8] अमाई[9] थिरपरिवाड़ी[10] गहियवक्को[11]।
जियपरिसो[12] जियनिद्दो[13] मज्झत्थो[14] देसकालभावण्णू[15]
आसन्नलद्धपइभो[16] नाणाविहदेसभासण्णू।[18]

पच्चीस गुणों से सुशोभित उपाध्यायों को विनम्रभाव से पंचांग प्रणतिपूर्वक वन्दना—तिक्खुत्तो आयाहिणं····।

णमो लोए सव्वसाहूणं—अध्यात्म-साधना में संलग्न पांच महाव्रत, पंचेन्द्रिय-निग्रह, चार कषाय-विवेक, भावसत्य,[1] करणसत्य,[2] योगसत्य,[3] क्षमा, वैराग्य, मन-वचन-काय-समाहरणता[4] ज्ञान-दर्शन-चारित्र-संपन्नता, वेदना और मृत्यु के प्रति सहिष्णुता—इन सत्ताईस गुणों के धारक, परीषह-जयी, प्रासुक-एषणीय-भोजी, अर्हत् और आचार्य की आज्ञा के आराधक, तपोधन साधु-साध्वियों को विनम्रभाव से पंचांग प्रणतिपूर्वक वन्दना—तिक्खुत्तो आयाहिणं···।

पंचविह-आयारजुत्तो सुत्तत्थतदुभयविहण्णू,
आहरणहेउकारणणयनिउणो गाहणाकुसलो।
ससमयपरसमयविऊ गंभीरो दित्तिमं सिवो सोमो,
गुणसयकलिओ जुग्गो पवयणसारं परिकहिउं ॥२॥

१. भावधारा की पवित्रता २. कार्य की प्रामाणिकता
३. मन, वचन, काया की विशुद्धि ४. वापिस खींचना—

जत्थेव पासे कइ दुप्पउत्तं,
काएण वाया अदु माणसेणं।
तत्थेव धीरो पडिसाहरेज्जा,
आइन्नओ खिप्पमिवक्खलीणं ॥

परिशिष्ट ३

८४ लाख जीवयोनि

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तैजस्काय, सात लाख वायुकाय, दस लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण वनस्पतिकाय, दो लाख द्वीन्द्रिय, दो लाख त्रीन्द्रिय, दो लाख चतुरिन्द्रिय, चार लाख नारक, चार लाख देवता, चार लाख तिर्यंचपंचेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्यपंचेन्द्रिय—८४ लाख जीवयोनि की विराधना की हो, तस्स मिच्छा मि दुक्कडं।

परिशिष्ट ४

प्रतिक्रमण-विधि

	पृष्ठ
१. चउवसत्थव	
इरियावहिय-सुत्तं	१८
तस्स उत्तरी	५२
चउवीसत्थव-सुत्तं	४
[एक 'लोगस्स' का ध्यान	
एक 'लोगस्स' का उच्चारण]	
सक्कत्थुई	५७
२. पढमं आवस्सयं	
आवस्सई-सुत्तं	१
नमुक्कार-सुत्तं	१
सामाइयं-सुत्तं	२
पडिक्कमण-सुत्तं	१६
तस्स उत्तरी	५२
ध्यान में	
णाणाइयार-सुत्तं	११
दंसणाइयार-सुत्तं	१२
चारित्रातिचार	६०
पडिक्कमण-सुत्तं	१६
नमुक्कार-सुत्तं	१
३. बीयं आवस्सयं	
चउवीसत्थव-सुत्तं	४
४. तइयं आवस्सयं	
वंदणय-सुत्तं (दो बार)	८
५. चउत्थं आवस्सयं	
णाणाइयार-सुत्तं	११

दंसणाइयार-सुत्तं १२
चारित्रातिचार ६०
पडिक्कमण-सुत्तं १६
तस्स सव्वस्स-सुत्तं १४
नमुक्कार-सुत्तं १
सामाइय-सुत्तं २
मंगल-सुत्तं १५
पडिक्कमण-सुत्तं १६
इरियावहिय-सुत्तं १८
सेज्जा-अइयार-पडिक्कमण-सुत्तं २०
गोयर-अइयार-पडिक्कमण-सुत्तं २१
सज्झायादि-अइयार-पडिक्कमण-सुत्तं २३
एगविधादि-अइयार-पडिक्कमण-सुत्तं २५
निग्गंथपावयणे थिरीकरण-सुत्तं ३२
खामेमि···· ३६
वंदणय-सुत्तं (दो बार) ८
पंचपद-वंदना ६४
खामणा-सुत्तं ३७
८४ लाख जीवयोनि ६६

६. पंचमं आवस्सयं

देवसिय-अइयार ५२
नमुक्कार-सुत्तं १
सामाइय-सुत्तं २
पडिक्कमण-सुत्तं १६
तस्स उत्तरी ५२
चउवीसत्थव-सुत्तं ४
(चार बार ध्यान में, एक बार उच्चारण)
वंदणय-सुत्तं (दो बार) ८

छट्ठं आवस्सयं

अईअं···· ५५
पच्चक्खाण-सुत्तं ५५
सक्कत्थुई (दो बार) ५७

नोट—१. दैवसिक या रात्रिक में चार, पाक्षिक में बारह, चातुर्मासिक में बीस और सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में चालीस 'लोगस्स' का ध्यान।

ध्यान सम्पन्न करने के पश्चात् एक 'लोगस्स' का उच्चारण।

२. प्रत्येक बार ध्यान की संपन्नता नमस्कारमंत्रपूर्वक।

३. छठे आवश्यक के अंत में दो बार 'नमोत्थु णं' का पाठ बोला जाता है। पहला सिद्ध भगवान् के प्रति, दूसरा अरिहंत के प्रति। फिर 'नमोत्थु णं' का उच्चारण नहीं किया जाता, केवल इतना ही कहा जाता है—**'मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स थवत्थुई मंगलं।'**

४. देवसियं, राइयं, पक्खियं, चाउमासियं, सांवच्छरिअं—इन शब्दों का उच्चारण यथाकाल, यथास्थान करना चाहिए।